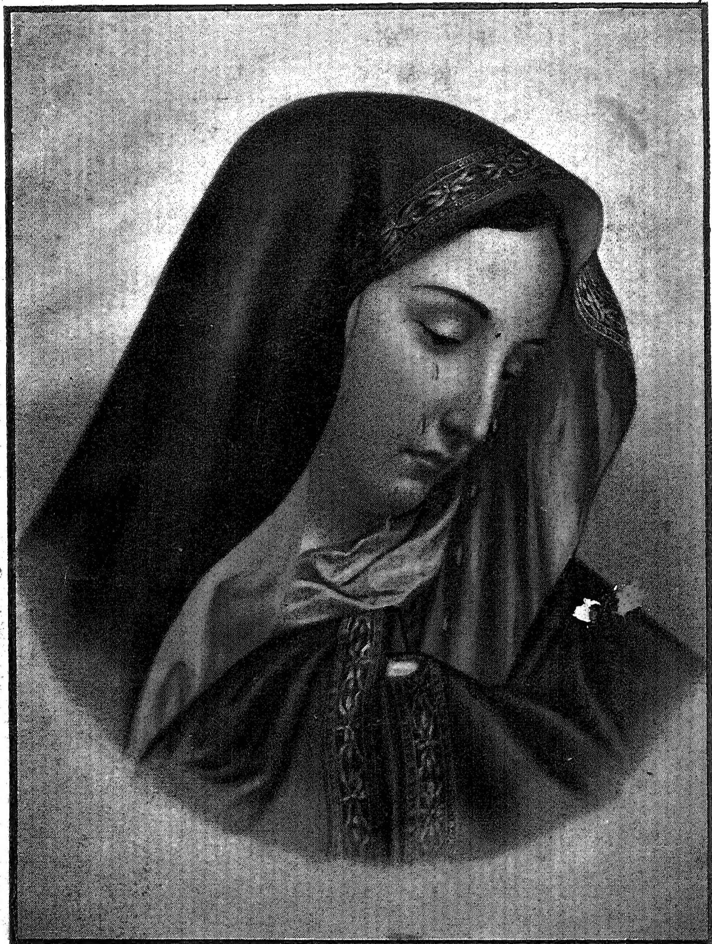
ा आँसू



श्री आत्माराम देवकर

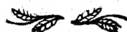
नौ आँसू

(नौ मौलिक गल्पों का संग्रह)

—:*:*:—

लेखक—
त्रैलोक्य सुन्दरी, आदर्श मित्र, मनमोहिनी,
भयङ्कर दुर्दशा, माया मरीचिका,
पानी का बुड़बुड़ा, स्नेहलता
इत्यादि-इत्यादि
पुस्तकों के रचयिता—

श्री आत्माराम जी देवकर



प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक कार्यालय,
कूचा पातीराम, देहली।

प्रथम रुदन]   जुलाई, १९२८ ई०   [मूल्य १)

प्रकाशक—
किशोरीलाल चौहान,
अध्यक्ष—हिन्दी पुस्तक कार्यालय,
कूचा पाती राम,
देहली।



मुद्रक—
महारथी प्रेस,
चाँदनी चौक, दिल्ली।

अपनी बात

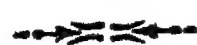
'नौ आँसू' के लेखक श्री० आत्माराम जी देवकर हिन्दी संसार से सुपरिचित नहीं तो अपरिचित भी नहीं हैं। समय-समय पर आपकी रचनायें सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इस पुस्तक की अधिकांश गल्पें भी इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। भिन्न-भिन्न प्रकाशकों द्वारा आपकी अनेक कृतियां इससे पहिले भी साहित्य-संसार में प्रगट हो चुकी हैं। आपके इस सुन्दर गल्प-संग्रह को साहित्य-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करते हुए सचमुच हमें बड़ा हर्ष होता है।

श्री देवकर जी की लेखनी में कैसा ओज है, कितना माधुर्य है,—इस पुस्तक का आद्योपान्त अध्ययन कर विज्ञ पाठक स्वयमेव इसे जान लेंगे। 'नौ आँसू' यदि उत्तम-साहित्य की श्रेणी में स्थान पा सका तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

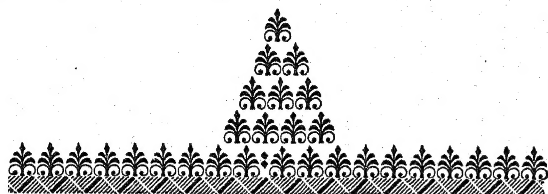
स्नेही—

किशोरीलाल चौहान

अनु-क्रम







नौ आँसू



१

एक बार मैंने स्वामी जी से पूछा—"महाराज, भाग्य को छोटा-बड़ा करने की भी कोई मशीन है ? स्वामी जी ने कहा–"वत्स, पौराणिक काल में इस वैज्ञानिक युग की सी किसी मशीन का आविष्कार नहीं हुआ था। सृष्टि-रचना के समय ब्रह्मा ने मुझे इस विषय में कुछ भी नहीं बतलाया"। मैं चट कह उठा-"तो, महाप्रभो, क्या इस नवीन युग का ब्रह्मा कोई दूसरा है ?" वह भौंहें चढ़ाकर बोले—"रे दुर्मुख, तू विश्वबृहन्नाटकालय के सूत्र-धार, आदि-देव, ब्रह्मा का अपमान करता है ! तू पाखण्डी एवं नास्तिक हो गया देख पड़ता है। अब तुझ से सृष्टि के कल्याण की आशा करना व्यर्थ है।"

मैंने भय से काँपते हुए जड़ित कण्ठ से कहा—"कल्याण-मूर्ते ! मैं आर्त्त होकर आपकी शरण आया हूँ; वाद-विवाद करने नहीं। मेरे हृदय में जो सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसे आप जैसे उच्चाशय महात्मा के अतिरिक्त और कौन दूर कर सकता है ?"

उन्होंने कहा—"ईश्वर के विषय में सन्देह करना मूर्खता का काम है।"

भूमिका

उपन्यास, नाटक और गल्प तीनों व्यापार की दृष्टि से एक ही हैं। उन्हें साहित्य का एक ही अंग समझना चाहिये। छोटे-छोटे उपन्यास एवं आख्यायिकाओं ही को गल्प संज्ञा दी गई है, जिसका अर्थ हिन्दी में कहानी है। उपन्यासों का कथानक विस्तीर्ण होने से उनके अंश-विशेष पर प्रकाश डालना कठिन हो जाता है। अभिप्रेत विषय के प्रतिपादनार्थ लेखक को अपने हार्दिक भावों के अतिरिक्त अन्यान्य कृत्रिम भावों की भी छाया डालनी पड़ती है। वह शब्द-जाल एवं कला-कौशल का एक निर्जीव चित्र है। किसी चतुर चित्रकार के खींचे हुए चित्रों में जो बात रहती है, वही उपन्यास के पठन-पाठन में पाई जाती है। उसमें सजीवता लाने के लिये नाटकों की सृष्टि हुई है। नाटक वास्तव में हृदयगत भावों के जीते-जागते चित्र हैं। पर, इस काम के लिये पर्दे, पात्र और अन्यान्य सामग्रियों की विशेष रूप से आवश्यकता रहती है; पठन-पाठन मात्र से वे मानव, चरित्र पर पूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकते। इसके आगे मुझे गल्पों के विषय में कहना है। किन्तु पाठक यह न समझें कि गल्प-लेखक होने ही के कारण मैं उन्हें अच्छे रूप में दिखाने की चेष्टा कर रहा हूँ। मैंने पहले-पहल उपन्यासों ही के लिये लेखनी उठाई थी। अस्तु यहाँ मैं अपने अनुभव के आधार पर उपर्युक्त विषय की आलोचना करना चाहता हूँ। गल्पें भी 'कथा-छल' ही के अन्तर्गत हैं।

उनमें यदि कोई विशेषता है तो वह चरित्र-चित्रण की सजीवता ही है। गल्प—लेखक के हृदय का सजीव फ़ोटो है। उसमें बायस्कोप जैसी कार्य्य-क्रम दिखलाने की अद्भुत शक्ति रहती है। और इसीसे यदि वह रवीन्द्र बाबू जैसे प्रतिभाशाली लेखक द्वारा लिखी जाय तो उच्च-भावों की शिक्षायत्री बन सकती है। आजकल प्रायः इतिहास, विज्ञान और दर्शनादि गहन विषयों के ग्रन्थ पाठकों को मनोरञ्जक नहीं बोध होते। फ़लतः उनकी ओर से अरुचि हो शीघ्र ही जी ऊब उठता है। इन विषयों के ग्रन्थ वे प्रायः पढ़ते ही नहीं और पढ़ने की इच्छा भी हुई तो एक बार पन्ने उलट डालने से वह 'पूर्ण' हो जाती है। बड़े-बड़े पर्वत से शास्त्र-पुराणों का पठन-पाठन कौन करे—कौन उतने समय तक चित्त को संयत रखे? उतना समय भी तो चाहिये। सेठ जी श्रीमद्भागवत का पारायण कराते हैं। लोगों को मेवा-मिष्टान्न खिलाते हैं। दक्षिणा भी देते हैं। पर, सुनते समय बेचारे निद्रा-देवी के चक्कर में पड़ जाते हैं। दूसरे, उसमें शब्द-जाल न होने से जैसा प्रभाव पड़ना चाहिये, नहीं पड़ता। नमक, मिर्च और धनियाँ-जीरे की चटपटी चटनी के बिना बेचारों से एक भी ग्रास गले के नीचे नहीं उतारा जाता। इसी से उनके लिये गल्पों की रचना हुई है। अस्तु, लेखकों के लिये यही उचित है कि वे सदा शब्द-विन्यास और काव्य-कौशल दिखलाने की दृष्टि से ही गल्पें न लिखा करें। विशेषकर हिन्दी में—जहाँ पढ़ने योग्य ग्रन्थों का एक प्रकार से अभाव ही है, और जहाँ अर्थ, दर्शन

और विज्ञान जैसे गहन विषयों पर पर्य्याप्त ग्रन्थ नहीं बने हैं, न उनके ज्ञानार्ज्जन के साधन ही सुलभ हैं—ऐसी गल्पों की अनिवार्य आवश्यकता है।

हमें यह लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि हमारी मृत-प्राय हिन्दी में भी अब अनेक गल्प-संग्रह प्रकाशित होने लगे हैं। इसे हमें अपना सौभाग्य ही समझना चाहिये। किन्तु अधिकांश गल्पों में उपन्यासों के से घटना-वैचित्र्य ही की अवतारणा देखी जाती है। उनमें प्रकृति की शोभा के अतिरिक्त अन्य कोई सार ही नहीं रहता। "प्रकृति नीरव-निस्तब्ध है। चहुँ ओर सन्नाटा छाया हुआ है", इस प्रकार के रूपक और लम्बी-चौड़ी भूमिकाओं की गल्पों में कोई आवश्यकता नहीं है। कहीं तो पाँच पृष्ठ की छोटी सी गल्प में दो पृष्ठ केवल प्रकृति-देवी पर न्यौछावर कर दिये जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने अपने उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार अपनी नौ मौलिक गल्पें रखी हैं। उनमें गल्प-लेखक के उद्देश्य की कहाँ तक पूर्त्ति हुई है—इसका निर्णय विज्ञ पाठक स्वयं कर लेंगे। यों तो अपनी रचना भला किसको बुरी लगती है; किन्तु, उत्तम वही समझी जाती है, जिसे विद्वान् आदर की दृष्टि से देखें। कहीं-कहीं यह भी देखा गया है कि कोई रचना एक सज्जन को पसन्द आई किन्तु दूसरे ने उसकी ओर आँख उठा कर भी न देखा। यह रुचि-भेद का कारण है; जिसके विषय में लेखक की बुद्धि प्रायः मौन धारण कर लेती है। कारण, उस पर कुछ

कहने का उसे अधिकार ही नहीं है। और बात है भी ऐसी ही। कारण, 'निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होय अथवा अति फीका ॥'

मेरी इन रचनाओं में श्री० प्रेमचन्दजी की रचनाओं जैसा कोई भी गुण नहीं है, फिर भी मैंने उन्हें पाठकों के करकमलों में रख ही दिया। क्यों ऐसा किया, इसका कोई उत्तर भी नहीं सूझता। मैं ख़ूब जानता हूँ कि मेरी यह धृष्टता क्षम्य नहीं है। इसी से मैं पाठकों से इस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहता। इस अक्षम्य अपराध के लिये वे मुझे जो कुछ भला-बुरा कहना चाहें, बराबर कह सकते हैं।

विनीत—
आत्माराम देवकर

मैंने हाथ जोड़कर कहा—"सत्य-रूप, भाग्य पर मेरा ऐसा अटल विश्वास हो गया है कि उसके आगे मुझे संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी तुच्छ जान पड़ने लगी।"

स्वामी जी बोले—"वत्स, भाग्य का भरोसा करना ही अकर्मण्यता है। सच पूछो, तो पुरुषार्थ ही भाग्य फेरने की कुञ्जी है। इसी मशीन से उसे छोटा-बड़ा कर सकते हो।"

मैंने कहा—"मुझे बतलाइये राजा नृग ने ऐसी कौन सी भूल की थी, जिसके कारण उन्हें गिरगिट बनना पड़ा, और पुरुषार्थ कुछ भी काम न आया?"

स्वामी जी की क्रोधाग्नि भभक उठी। उन्होंने मेरा कान मल कर कहा – "तू छोटे मुँह बड़ी बात करता है! राजा नृग को ब्राह्मण के शाप से गिरगिट होना पड़ा था।"

मैंने चरण पकड़ कर कहा—"भगवन्, उस समय के ब्राह्मण तो आजकल के ब्राह्मणों-सरीखे क्रोध-परवश न थे। क्षमा ब्राह्मण का मुख्य गुण है, और उसके रहने ही से ब्राह्मणत्व की शोभा है। क्रोध से तप और तेज नष्ट हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्र जी महाराज के राज्य में शासन ब्राह्मणों के हाथ में था। इस से ज्ञात होता है, उससे पूर्व, सतयुग में, अवश्य ही ब्राह्मण दोषादोष-निरूपण की समता रखते थे। अतः क्रोध को ब्राह्मण के शाप का कारण न मानने से इन सभी बातों का हल करना कठिन हो जायगा।"

स्वामी जी ने खीझकर कहा—"ब्राह्मण के शाप का कारण क्रोध माना जा सकता है; किन्तु उससे राजा नृग की निर्दोषिता नहीं प्रमाणित होती। पूर्व के किसी संस्कार के कारण, दैव की प्रेरणा से, ऐसा हुआ होगा—इस धारणा को निर्मूल सिद्ध करने के लिये तेरे पास क्या प्रमाण है?"

मैंने कहा—"वेदमूर्त्ते, मुझमें आप की युक्तियाँ काटने की क्षमता कहाँ? मैं तो आप का अनुगामी हूं। आप के बतलाए मार्ग पर चल रहा हूँ। किन्तु अन्धेर यही है कि पाप में नाक तक सने हुए बूढ़े लाला जी एक बूढ़ी सड़ी-सी गऊ देकर सदा के लिये स्वर्ग के अधिकारी हो गए, और बेचारा राजा नृग लक्ष गउएँ नित्य देकर भी उस अँधेरे कूप-रूपी कारागृह की यन्त्रणा से मुक्त न हो पाया! मेरी तुच्छ बुद्धि में तो यही आता है कि लालाजी के पास अवश्य ही कोई भाग्य फेरने की मशीन थी।"

स्वामीजी ने एक चपत जड़कर मुझसे कहा—"यह सब पाखण्ड है। मनुष्य और देवता, सभी कर्म-सूत्र में बँधे हुए हैं। सबको किए कर्मों का फल भोगना पड़ता है। पाप-पुण्य के उदय और विलय का अनुसंधान तू क्योंकर कर सकता है?"

मैंने विनीत भाव से कहा—"महाराज, जन्मान्तर-रहस्य को आप ही जानें। आप त्रिकालदर्शी हैं। मैं अज्ञान सांसारी हूँ। आपकी बातें बिना किसी तर्क के मानने के लिये उद्यत हूँ।

किन्तु यदि देव, दानव, नाग, नर, गन्धर्व, सब, एक ही न्याय के सूत्र में बँधे हैं, तो यह बतलाइए कि अश्वमेध-यज्ञ से घोड़ा चुरा ले जाने में इन्द्र का दोष था या यज्ञ करने वाले का? ऐसा निन्द्य कर्म करने पर इन्द्र तो अपने आसन से च्युत नहीं होता था, किन्तु वह बेचारा, जो इन्द्रासन पाने के लिये इतना कठिन परिश्रम करता था, अपने साधन से च्युत हो जाता था! इन्द्र को इस गुप्त चोरी के लिये कोई दण्ड नहीं दिया जाता था!"

अब की बार मेरे पागलपन पर स्वामी जी ने जोर से हँस दिया, और बोले—"वत्स, घोड़ा चुराने से इन्द्र ही की करनी बिगड़ती थी, यज्ञ करनेवाले की नहीं। इसका मर्म जानना चाहो, तो इन्द्र की तपस्या करो। उनका साक्षात्कार होने पर तुम्हें इसका उत्तर मिल जायगा।

मैं "तथास्तु" कह कर पागल की भाँति एक ओर चल दिया।

२

मैं इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करने लगा। अन्न का त्याग किया; वन में उत्पन्न हुए कंद-मूलों से जठर-ज्वाला शान्त करने लगा। वल्कल की छोटी सी लँगोटी लगा,

पौष-माघ के कड़े शीत में वृक्ष के नीचे बैठ कर, इन्द्र-भगवान् का ध्यान करता था। बन के पशु-पक्षी मुझे देखकर मानों हँस देते थे। किन्तु मैं तनिक भी ध्यान न देता था–आँख उठाकर भी न देखता था। जब कभी कोई भूला–भटका पथिक मेरे पास आ जाता, तो मैं उसे फल-फूल देकर सन्तुष्ट करता, शीतल जल वाले सुन्दर सरोवर में स्नान कराकर मार्ग की थकावट दूर करता, कपट मुनि की तरह उसे कभी धोखा न देता था। सरोवर में नृत्य करने वाले पक्षी दोनों में से मेरी खाद्य-सामग्री उठा ले जाते और बदले में मुझे लोकोत्तर आनन्द-दायक स्वर्गीय गीत सुनाते थे। मधु-कंठी की मधुर कूक मेरा ध्यान-भङ्ग कर देती थी। किन्तु उसके चले जाने पर मैं पुनः उन्हीं उपास्य–देव के ध्यान में मग्न हो जाता था। पत्तों पर पड़े हुए ओस के कण जब सूर्य की किरणों में मोती-से चमकते, तो उनमें उन्हीं आराध्य–देव की ओजोमयी मूर्ति देखने का प्रयत्न करता था। किन्तु वह मुझसे बहुत दूर रहते थे। वर्षा के काले-काले मेघों को देख मुझे उनके केशों का स्मरण हो आता था; पर मैं कवि-पुंगव कालिदास की तरह वाक्-सिद्ध न था, श्रीकाली और सरस्वती की वैसी सहानुभूति मैंने प्राप्त नहीं की थी। फिर भी, गला फाड़कर, उच्च स्वर से, उन (मेघों) के द्वारा उपास्य-देव के निकट अपना प्रेम–सम्वाद भेजने का प्रयत्न करता था। मेरे प्यारे

दूत, सम्वाद-वाहक मेघ, जब धारित्रीदेवी का उत्ताप दूर करने के लिये नन्ही-नन्ही बूँदों से उन्हें सींचते और जब मयूरगण उन्हें देख हर्ष-विह्वल हो, ताण्डव-नृत्य करते थे, तो उनके पुच्छ-गुच्छ में बनी हुई नेत्राकृति मानों सजीव होकर नेत्रों के द्वारा प्रियतम का शुभ सन्देश सुनाती थी। निदान, कई वर्षों के कठिन तप से प्रसन्न हो एक दिन इन्द्र भगवान् ने मूसलाधार पानी बरसाना शुरू कर दिया। पर्जन्यदेव ने भीषण मूर्ति धारण कर सारे संसार को प्लावित कर दिया। नदी-नदों ने मर्यादा तोड़ पहले तो बन में प्रवेश किया, फिर जिस पर्वत पर मैं बैठा था, उसे ही डुबाना चाहा। मैं भागकर एक बहुत ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गया; किन्तु देखा, जल भीषण-भैरव हुंकार करता और उस वृक्ष के चारों ओर चक्कर लगाता हुआ ऊपर चढ़ रहा है। मैं बहुत घबराया, और बचने का कोई उपाय न देख दोनों हाथ ऊपर उठा इन्द्रदेव की दुहाई देने लगा। इतने में विद्युत्पात के सदृश एक भयानक शब्दाघात हुआ, और जल पर स्वर्ग का दिव्य प्रकाश फैल गया। उस घोर संकट के समय भी विस्मय-विमुग्ध नेत्रों से मैं उनकी ओर देखने लगा। उसी प्रकाश में मिली हुई, नेत्रों में चकाचौंध डालने वाली एक अत्यन्त उज्ज्वल एवं दीप्तिमयी भव्य-मूर्ति सामने आकर खड़ी हो गई! मैंने चिल्लाकर कहा—"हे स्वर्गाधिपति, दया कर मेरे प्राण बचाइए, नहीं तो

कुछ ही क्षण में यह अनन्त जल-राशि मुझे डुबा देगी।"

इन्द्रदेव ने मेघ सदृश गम्भीर स्वर से कहा—"दया हम जानते नहीं!"

मैंने पूछा—यह क्यों "महाराज?"

उत्तर मिला–"जिस लोकमें निष्ठुरता है, वहीं के लोग दया करना जानते हैं। हमारे यहाँ दया की आवश्यकता ही क्या?"

मैंने बड़े ही करुण स्वर से कहा—"देवराज, तो क्या आपकी शरण में आने पर भी इस भीषण जल-प्रलय से रक्षा न होगी?"

इन्द्रदेव ने हँसकर कहा—"कुछ पुण्य किया है?"

मैं—"महाराज, मुझे तो स्मरण नहीं। आप देवाधिदेव हैं; जानते होंगे।"

इन्द्र—न बतलाने से उद्धार न होगा।

मैं—"मैं त्रिशंकु नहीं हूँ, जिसे लात मारकर स्वर्ग से गिरा दिया था।"

उत्तर सुनकर इन्द्रदेव सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ तिनके की तरह ऊपर आकाश की ओर फेंक दिया। मैं एक बहुत ऊँचे पर्वत-शृंग पर जा गिरा, और गिरते ही अचेत हो गया।

३

चेतना आते ही मैंने अपने को अमरों के पुण्य-लोक में पाया। यह लोक धर्म के दिव्य आलोक से आलोकित था। यहाँके मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि सभी सुन्दर, सुडौल, नीरोग एवं तेजःपूर्ण थे। उनमें पारस्परिक वैषम्य न था, छोटे-बड़े का भेद न था, निर्बल को सबल से सताये जाने की आशंका न थी, मुट्ठी-भर दानों के लिए द्वार-द्वार भटकने और हाय-हाय करने की आवश्यकता न थी, द्रव्य के लिये सच को झूठ, झूठ को सच, न्याय को अन्याय, अन्याय को न्याय, भले को बुरा, बुरे को भला, नीच को ऊँच, ऊँच को नीच और धर्म को अधर्म तथा अधर्म को धर्म कहने की अन्धी प्रथा यहाँ न थी। यहाँ के मनुष्य सांसारिक मनुष्यों जैसे मिथ्याभिमानी न थे। उनमें ईर्ष्या-द्वेष की झलक तक न थी; सब-के-सब प्रफुल्ल एवं सन्तुष्ट दिखलाई देते थे। उनके चेहरों पर विषाद की छाया तक न पड़ने पाई थी। शोक, वियोग और सन्ताप का यहां नाम भी न था—सर्वत्र शान्ति और प्रेम का अटल राज्य था। यहाँ के मनुष्य जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त थे। प्रेमी-प्रेमिकाओं को एक दूसरे के लिये मरना नहीं पड़ता था। सभी एक दूसरे को स्नेह–दृष्टि से देखते थे। मर्त्यलोक जैसी कड़ी परीक्षाओं की व्यवस्था यहां न थी। यह भोग का

स्थान था, योग का नहीं। किसानों को कड़ी धूप में पृथ्वी का वक्षःस्थल विदीर्ण करने के लिये पसीना नहीं बहाना पड़ता था, मेघों से जल के लिए कातर प्रार्थना नहीं करनी पड़ती थी। अकाल और महामारी की व्याधियां यहां के लोगों को त्रस्त नहीं करती थीं।

इन सब गुणों के रहने पर भी यहाँ के लोगों में एक बड़ा भारी दुर्गुण था। मर्त्यलोक में उसे अकर्मण्यता कहते हैं। किन्तु कह नहीं सकता, यहाँ के लोग उसे किस नाम से पुकारते थे। सब-के-सब भोग के कीड़े बने हुए थे। सुकुमारता की मात्रा यहाँ तक बढ़ी-चढ़ी थी कि उन्हें उठकर बैठना तक भार प्रतीत होता था।

मैं उन धर्मात्माओं से सम्भाषण करना चाहता था; किन्तु न जाने क्यों, वे मुझे देख कर घृणा से नाक सिकोड़ते थे। फिर भी साहस कर मैंने एक के निकट जा स्नेहालाप करना चाहा। किन्तु न जाने कहाँ से एक दीर्घकाय बलिष्ठ मनुष्य दाँत पीसता आ गया। उस दुष्ट ने कान पकड़ कर मुझे वहाँ से निकाल दिया। मैं उससे युद्ध करने के लिये तैयार हुआ। किन्तु उसने इसके पहले ही मेरी नाक पकड़ कर बहुत लम्बी कर दी थी। मैंने रोकर कहा—"महाराज, भूत की सी बड़ी नाक लेकर मैं मर्त्यलोक वापस जाने में अपनी मान-हानि समझता हूँ। कृपा कर मेरी नाक अपेक्षाकृत छोटी कर दीजिए।"

शायद उसे दया आ गई। उसने मेरी नाक बहुत छोटी और चपटी करके कहा—'यह पुण्यात्माओं के रहने का स्थान है। पापियों का यहाँ क्या काम ?'

मैंने कहा—"धर्म-मूर्त्ते, पापी क्या पुण्यात्मा नहीं हो सकता ?"

उसने कहा—"कर्म-भूमि में जाकर कर्म करो।"

मैं—"आपके राजाधिराज के दर्शन करके भी मैं पापी बना रहा ?"

उसने बड़े ही कर्कश स्वर से ललकार कर कहा—"ख़ाली दर्शन से कुछ नहीं होता; कर्म करो !"

मैंने अपनी तपस्या की बात फिरभी मुखसे नहीं निकाली। कारण, मुझे ययाति की तरह स्वर्ग से गिर जाने का डर था। मैंने कहा—"तो आप मुझे नरक ही में डाल दीजिये। मैं मर्त्य-लोक में वापिस नहीं जाना चाहता।"

वह मेरे पागलपन पर बहुत हँसा, और बोला—"यह स्वर्ग है, कि नर्क ?"

मैं—"क्षमा कीजिए। मुझ से भूल हो गई।"

इतने में मध्यान्ह के मार्त्तण्ड की तरह दिपते हुए इन्द्र भगवान् आ गए। वह दुष्ट उनके डर से न जाने कहाँ भाग गया, और मैं वहीं सिमट कर रह गया।



इन्द्र ने कहा—"अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

मैंने विनीत भाव से कहा—"महाप्रभो ! मुझे संसार की यन्त्रणाओं से मुक्त कर अपने इसी प्रेम-राज्य में विचरने दीजिए।"

उन्होंने मुस्करा कर उत्तर दिया—"मुझे यह अधिकार नहीं।"

मैंने विस्मय से कहा—"स्वर्गाधिपति के लिए यह कौन बड़ा काम है !"

इन्द्र ने तिरस्कार पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देख कर कहा—"आत्मा की उन्नति और अवनति कर्म पर अवलम्बित है। तुम चाहो तो उसी कर्म के बल से स्वर्ग में आ सकते हो।"

मैंने कहा—"तो महाराज, अभी न इसका निर्णय कर दीजिये।"

उन्होंने कहा—"तू मूर्ख है। निर्णय धर्मराज करते हैं। मैं तो स्वर्ग का दारोग़ा हूं। जो जीव पुण्य-बल से यहाँ आ जाते हैं उन्हें पुण्योदय के शेष रहने तक यहाँ रखता हूँ। तदनन्तर पुनः कर्म के लिये मर्त्य-लोक भेज देता हूँ।"

मैंने नम्र भाव से कहा—"महामहिम, तब आप भी कर्म-सूत्र में बँधे हुए हैं।"

इन्द्र बोले—"क्यों नहीं; हमारी भी अवधि है। तपोबल का क्षय होने पर हमारा स्थान भी अन्य व्यक्ति आकर ले लेता है। हम लोग भी पुनः कर्मभूमि में जाकर कर्म करने के इच्छुक होते हैं। स्वर्ग का यह तुच्छ सुख अल्पस्थायी है। इसे हम सदा नहीं भोग सकते।"

मैं—"तो भगवन्, क्या इससे भी बढ़ कर कोई स्थायी पद है, जो पूर्णतया निरापद एवम् अच्युत हो?"

इन्द्र—"इस विषय में मुझ से अधिक तुम्हारे स्वामी जी ही जानते हैं। उनसे जाकर पूछो।"

मैं—"महाराज, सुना है, कि ब्रह्मा जी भाग्य-विधाता हैं। उनके पास भाग्य को छोटा-बड़ा करने की मशीन अवश्य होगी। मैं उन से मिल कर इसका पता लगाना चाहता हूँ।"

इन्द्र—"ब्रह्मा जी भी कार्यकर्त्ता-मात्र हैं। उनके पास ऐसी कोई मशीन नहीं है, और न वह स्वेच्छा-पूर्वक किसी के भाग्य को छोटा-बड़ा कर ही सकते हैं। धर्मराज शुभाशुभ कर्मों का जो लेखा पेश कर देते हैं, उसी के अनुसार वह भाग्य के अङ्क बना देते हैं।"

मैं—"तब उन से मिलने की कोई आवश्यकता नहीं। सब बातों में मुझे कर्म ही प्रधान दिखलाई देता है।"

इन्द्र देव ने अन्तिम आज्ञा सुना दी—

"कर्म ही ईश्वर है, कर्म ही देवता है, कर्म ही वेद का रूप है कर्म ही स्वर्ग-नर्क और लोक-परलोक का अधिकारी है। कर्म ही आत्मा की उन्नति और अवनति का कारण है। कर्म ही भाग्य को छोटा-बड़ा करने की मशीन है। अस्तु, उसी का आश्रय ग्रहण करो। उसी के द्वारा तुम्हारा सच्चा कल्याण होगा। मनुष्य-शरीर ही साधन और मर्त्य-लोक हा उसका स्थल है। अस्तु, तुम वहीं जाकर स्वामी जी के आदेश का पालन करो।"

दूसरा आँसू

ग
ज्जू

का

च
बू
त
रा

१

सारँगपुर के ठाकुर हीरासिंह बड़े ही देवभक्त थे। आप राजपूत ठाकुर नहीं, गोंड-ठाकुर थे। आपके पूर्वजों ने खेत के किनारे, एक सुन्दर आम के पेड़ के नीचे गोल चबूतरे पर इष्ट-देव की स्थापना की थी; किन्तु तब से किसी ने उसके जीर्णोद्धार की ओर ध्यान नहीं दिया था। अस्तु, वहां बड़े-बड़े बिल बन गये थे। छोटी-छोटी झाड़ियों ने चारों ओर फैलकर वहाँ की शोभा-श्री बिलकुल ही नष्ट-भ्रष्ट कर दी थी। सुनते हैं, वर्ष में एक दिन अर्थात् विजयादशमी को छोड़, कभी कोई वहां दर्शन करने नहीं गया। बलि-पशु द्वारा देवताको साल में एकबार सन्तुष्ट करके लोग वर्ष-भर के लिये निश्चिंत हो जाते थे। किन्तु ठाकुर हीरासिंह के मन में भक्ति-भाव एवं श्रद्धा पूर्णरूप से विद्यमान थी। आप अपने पूर्वजों जैसे—नेग चुकाने वाले—ढोंगी धार्मिक न थे। आपने यथासम्भव उस स्थान को रमणीय बनाकर इधर-उधर छोटे-छोटे फूलों के पौदे भी लगवा दिये। झाड़ने-बुहारने तथा पानी देने के लिये एक

आदमी अलग नियुक्त कर दिया। वही इष्ट-देव की पूजा भी किया करता था; शाम को मिट्टी के सकोरे में मीठे तेल का टिमटिमाता हुआ दीपक जला देता और घण्टा-घड़ियाल बजाने और देवता को कुछ भजन सुनाने के उपरान्त दैनिक कार्य से छुट्टी पाता था। पूजा-अर्चा में जो ख़र्च होता था, वह ठाकुर साहब ही अपने पास से देते थे।

२

जो आदमी इस काम पर नौकर था, उसका नाम गजाधर था, पर लोग गज्जू कह कर पुकारते थे। शरीर का ठिंगना, पर बलिष्ठ था। परिश्रमी भी बड़ा था। सुबह से शाम तक वह उस स्थान की देख-भाल रखता और अपने हाथ से कूड़ा-करकट साफ़ करता था। चूहे बिल, और पक्षी घोंसले बना कर दीवारें पोली कर देते थे। गज्जू जहाँ छेद देख पाता था, वहीं मिट्टी सान कर भर देता था। देवता की पूजा भी बड़ी धूम-धाम से करता, लोगों को प्रसाद बाँटता और बालकों को 'खीर' खिलाता था। फ़सल पर आमों की रखवाली भी वही करता था। गुफने से पक्षियों को उड़ाता और गाँव भर के बालकों को आम का रस पिलाता था। ठाकुर साहब का लड़का रूपसिंह उससे बहुत हिल गया था। वह दिन भर

गज्जू के साथ खेला करता था। गज्जू एक मज़बूत रस्से का झूला डाल कर उस पर उसे झुलाता रहता था। बालकों को जमा कर दूर जङ्गल में ले जाता और उन के साथ आप भी आँख-मिचौनी खेलता था। जब किसी बीहड़ स्थान में छिप जाता, तो बालक लाख सिर पटकने पर भी उसका पता न पाते। किन्तु जब कभी वे ढूँढ़ निकालते, तब घोर कोलाहल करते हुए उसपर टूट पड़ते थे। वह भी अट्ट-हास्य करके चारों ओर के बन-प्रान्तको गुँजा देता था। रूपसिंह को उसके कन्धे पर बैठ कर बन की सैर करना बहुत पसन्द था। गज्जू उसे कन्धे पर बिठा हनुमान-सरीखी छलागें मारता दूर तक चला जाता था, और जब भयभीत हो रूपसिंह लौटने को कहता तब कहीं लौटता था। रहने के लिए एक छोटा सा झोपड़ा बनवा लिया था। वहीं रह कर वह चक्रवर्ती नरेश की तरह सुख से दिन बिताता था। संसार में उसका अपना सगा कोई न था। किन्तु वह अकेला भी न था। स्वेच्छाचारी बनविहारी बालकों के आनन्द कोलाहल से उस की कुटी गूँजती ही रहती थी। उनके साथ वह जितना सुखी था, उतना संसार में शायद कोई बड़े-से बड़ा धन-कुबेर भी न होगा।



३

उन दिनों गेहूँ का भाव २२॥ सेर का था। गज्जू को इसी हिसाब से ४५ सेर गेहूँ मिलते थे। बस यही उसकी मासिक-वृत्ति थी। इतने ही में वह अपना पेट पालता था। इसी से कुछ बचा कर पर्व-त्यौहारों पर बालकों को खिला भी देता था। वह कुश्ती के दाँव-पेंच खूब जानता था। कई बालक उसके शागिर्द बन कर कुश्ती लड़ना सीखते थे; पर वह इस की दक्षिणा कुछ न लेता था। था तो निरक्षर, पर ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पूरा पालन करता था। बालकों को कसरत और दाँव-पेच सिखाने में उसका अभ्यास भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। धीरे-धीरे वह नामी पहलवान होगया। लोग दूर-दूर से आकर उसकी कुश्ती देखते और सराहना करते थे।

उन दिनों दानवीरता में 'रेहू' के ठाकुरों का अच्छा नाम था। वे गुण का आदर करना जानते थे। इसी से दूर-दूर के पंडित, ज्योतिषी, वैद्य, गवैये, कवि इत्यादि उन के यहाँ बने ही रहते थे। एक पहलवान भी था; जिसका रोज़ाना रातिब डेढ़ सेर हलुआ और तीन सेर दूध बँधा था। झाँसी, ग्वालियर भेलसा इत्यादि स्थानों में जाकर उसने पहलवान पछाड़े थे। पहलवान उसके नाम से दहलते और उसके साथ कुश्ती लड़ने में हिच-कते थे। कई स्वर्ण और रौप्य-पदक भी उसके पास थे। बड़ा

ही अक्खड़ और मनमौजी था। एक दिन जी में आया—"अब की कुश्ती गज्जू से बदी जाय।" बस देर ही क्या थी चट ठाकुरों को जा सुनाया। वे हँस कर बोले—"बादल, गज्जू क्या खाकर तुम से कुश्ती लड़ेगा ? बेचारा भूखा-टूटा ग़रीब आदमी किस बिरते पर तुम्हारा सामना करेगा ? और उससे लड़ने में तुम्हारा नाम ही क्या होगा ?"

पहलवान ने हठ पकड़ ली। उसने एक ही उत्तर दिया—"इस बार गज्जू से मेरी कुश्ती अवश्य हो।"

सुन कर ठाकुर साहब सन्न होगए।



आगामी नाग-पञ्चमी (गुड़ियों) को रेहू के बादलखाँ और गज्जू की कुश्ती होना निश्चित् हो गया। दोनों शेर मल्ल-युद्ध में विजय की आशा से उत्फुल्ल हो उठे। दुगुने उत्साह से कसरत और ज़ोर करने लगे। बादल की खूराक बढ़ा दी गई। किन्तु बेचारे गज्जू के भाग्य में वही डेढ़ सेर गेहूँ लिखे थे। रेहू के ठाकुर साहब ज़रा शौक़ीन मिज़ाज थे। हीरासिंह में यह बात न थी। वह पुराने ढर्रे के आदमी थे; इन बातों को कब पसन्द करने लगे ? उन्हें तो विवश होकर ठाकुर साहब का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा था; स्वेच्छा से नहीं।



सोचते थे — "बादल जीतेगा ही फिर इस व्यर्थ की खटखट में पड़कर अपना पैसा क्यों बहाऊँ? जिसको चाहता हो लूटनी हो वही पैसा खर्च करे।"

धीरे-धीरे नाग-पंचमी आगई। दर्शकों की तैयारियाँ होने लगीं। लोग आस-पास के गाँवों से एक दिन पहिले आ-आ कर डट गये। बादल के जीतने में किसी को सन्देह न था; किन्तु गज्जू के चेले चापड़ अपनी ही बेतुकी हाँक रहे थे। गुड़ियों के दिन सवेरे ठीक १० बजे बादल का दल डंके पर चोट देता, झण्डा फहराता, आ पहुँचा। सब के आगे लँगोट-बन्द पहलवान बादल अकड़ते आ रहे थे। ठाकुर साहब भी हाथी पर सवार अपने मुसाहबों के साथ पीछे आ रहे थे। हीरासिंह ने उनका उचित सत्कार किया। खान-पान और आदर-सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि न होने दी। ठीक दो बजे "जय बजरंग बली की" पुकारते हुए बादल के दल ने अखाड़े की ओर प्रस्थान किया। सब लोग यथास्थान आ डटे। दर्शक गण पहले ही से चातक की तरह बादल पर दृष्टि लगाए बैठे थे। असंख्य नेत्रों ने एक साथ बादल पर आदर, प्रेम और सहानुभूति की वर्षा की। इधर बादल ने गज्जू को और गज्जू ने बादल को देखा। दोनों का सामना होते ही लोग गज्जू के गम्भीर मुँह को करुण-दृष्टि से निहारने लगे। गज्जू ने किसी की ओर न देखा; चुपचाप देवता के

सम्मुख प्रणाम किया; थोड़ी सी भभूत माथे पर चढ़ाई, और मुसकराता हुआ अखाड़े में जा खड़ा हुआ। लोगों के मुँह से एक अस्फुट-ध्वनि निकल कर वायु-मण्डल में विलीन हो गई। बादल ने उठ कर ताल ठोकी। डण्के के गगनभेदी निनाद ने उसका स्वागत किया—वीर हृदय उछलकर आस्मान पर जा चढ़े।

हीरासिंह वीर-रस की नई उमङ्ग में बोल उठे—"ले गज्जू, बादल को!" हीरासिंह के इस एक ही वाक्य ने गज्जू को गजेंद्र बना दिया—शरीर फूल कर चौगुना हो गया। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानों वह बढ़कर आसमान से जा लगा हो। लोगों ने देखा, गज्जू अब वह गज्जू नहीं, वरन् साक्षात् इन्द्र भगवान् का मस्त गजराज है। लोगों ने हर्ष-ध्वनि की, और गज्जू ने उछल कर बादल को पछाड़ ही तो दिया। दर्शकों की घोर कोलाहल-पूर्ण हर्ष-ध्वनि और करतल-ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। हीरासिंह ने उठकर गज्जू की पीठ ठोकी। रेहू के ठाकुर साहब ने तीव्र-दृष्टि से गज्जू की ओर देखा, और शरमाते-शरमाते अपनी सोने की अँगूठी निकाल कर उसकी उँगली में पहना दी।

❀ ❀ ❀

५

बादल फिर लौटकर रेहू नहीं गया। उसके बिना ठाकुर साहब को सूना जान पड़ने लगा। उन्होंने गज्जू को बुलवाया, खाने-पीने और ओढ़ने-पहनने का प्रलोभन दिया। किन्तु वह राज़ी न हुआ। ठाकुर ने इससे अपना अपमान समझा, और वह गज्जू से बदला लेने का अवसर ढूँढ़ने लगे। शाहख़र्ची में प्रतिहिंसा-प्रवृत्ति की अधिक मात्रा रहती है, और वह समय पर अपनी करतूत भी दिखलाती है। अस्तु, गज्जू को मुट्ठी में करने के लिये षड्यन्त्र रचे जाने लगे। किन्तु गज्जू ग़ज़ब का गुरु-घण्टाल निकला। चालाकों की कोई भी चाल न चल पाई।

उसी गाँव में मौलवी फ़ैज़बख़्श नाम के एक माफ़ीदार रहते थे। बड़े चतुर और दूरदर्शी थे। ठाकुर साहब ने उन्हें बुलवाकर कहा—"मौलाना साहब, आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें गज्जू या तो अपने यहाँ आ जाय, या वहाँ से भी चला जाय।" मौलाना साहब अपनी लम्बी, सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—"राजा साहब, तदबीर तो बड़ी माक़ूल दीमाग़ में आई है; ख़ाली रुपये का ख़र्च है। इजा-ज़त हो, तो अर्ज़ करूँ।"

ठाकुर साहब ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ-हाँ, कहिए; रुपए जितने लगें मुझसे लीजिए।"

फ़ैज़बख़्श बोले—"आप ठाकुर हीरासिंह से वह ज़मीन, जहां चबूतरा और आम का दरख़्त है, ख़रीद लीजिए। फिर सब काम मैं कर लूंगा। मुझे यक़ीन है कि दुगुना-तिगुना रुपया पा जाने से वह ज़मीन ज़रूर आपको दे देंगे।"

ठाकुर साहब को भी बात जँच गई। बोले—"आप ही न जाकर तय कर आइए।"

मौलाना साहब सारँगपुर पहुँचे। ठाकुर साहब को बहुत आगा-पीछा सुझाया, हिताहित का ज्ञान कराया; किन्तु धर्म-भीरु ठाकुर टस-से-मस न हुए। तब मौलाना साहब धर्म ही का सहारा ले अपना मतलब गाँठने लगे; बोले—"जनाब, यह सब तो आपको आज़माने के लिये कहा गया है। असल बात तो यह है कि ग़रीब मुसाफ़िरों की तकलीफ़ रफ़ा करने के लिये यह तदबीर सोची गई है। इलाक़े भर में कोई नदी या तालाब नहीं है। लोग मालगुज़ार-ज़मींदारों की शिकायत कर रहे हैं। तालाब खुद जाने पर ग़रीब मुसाफिरों को बड़ी आसाइश हो जायगी। मौक़े की ज़मीन देखकर ही आपको तकलीफ़ दी गई है। उम्मीद है, आप इस सबाब के काम में हत्त-इ-उल्-वसः इम्दाद करेंगे।"

ठाकुर साहब कुछ देर रुक कर बोले—"यही बात है? अच्छा तो मुझसे दूसरी ज़मीन ले लीजिए।"

मौलाना—"दूसरी ज़मीन की ज़रूरत होती, तो बन्दा यहाँ

आकर आपका वक्त क्यों ज़ाया करता ?"

हीरा०—"पर वह तो देवता की जगह है; वहाँ कोई दूसरा काम हो कैसे सकता है ?"

मौलाना—"अजी, यह तो महज़ नादानी का सवाल है। भला देवता की भी कोई जगह होती है ? दुनिया में दूसरों को जिससे फ़ायदा पहुँचे, वही सच्चा देवता है। ठाकुर साहब, हमारे रसूल और नबी का यही फ़रमान् है। आपने भी तो शास्तर में सुना होगा न ?"

सुनकर ठाकुर साहब चुप हो रहे। उन्हें इधर-उधर करते देख मौलाना साहब फिर बोले—"क्या देवता के लिये कोई जगह मख़सूस होती है ? यहाँ अपने घरमें बुला लीजिए—यहीं पूजा कीजिए। सबाब का काम है; देवता देखकर ख़ुश ही होंगे।"

मौलाना साहब इस विषय पर बहुत देर तक बहस करते रहे। अन्त को जब हीरासिंह ने देखा कि मौलाना साहब के कौशल-जाल से छूटना असम्भव है, तो कहने लगे—"अच्छा, दो दिन में सोच-समझ कर जवाब देंगे, मौलाना साहब।"

मौलाना साहब समझ गए—काम फ़तह है; ज़रा सा लालच दिखलाने से रास्ता साफ़ है।



६

संसार में धन ही सब कुछ है। धन ही से धर्म होता, धन ही से आदर मिलता और धन ही से गुण की पहचान होती है। अथवा यों कहना चाहिए कि धन ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ गुण है। धन ही स्वर्ग, और धन ही देवता है। सच है—"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।" यज्ञ, होम, पूजा-पाठ, दान-धर्म और व्रत, सभी धनके करिश्मे हैं। संसार इन्हें जिस दृष्टि से देखता है, वह अभ्रांत नहीं, भ्रम-पूर्ण—सदोष है। तभी तो परीक्षा लेने के लिये भगवान् को भी निष्ठुर नीति का अवलम्बन करना पड़ता है!

पहले तो ठाकुर साहब ने ज़मीन देने में हीला-हवाला किया; किन्तु जब मूल्य की रक़म २,०००) से ४,०००) तक पहुँची, तब तो धार्मिकता की नक़ली नक़ाब खिसक गई। मौलाना साहब को एकान्त में बुलाकर बैनामा लिख दिया। घर में एक सुन्दर वेदी पर इष्टदेव की स्थापना की, और लोकोपकार का ढोंग फैलाकर खुले-मैदान लोगों की आँखों में धूल झोंक दी। मूर्ख सजातीय और ग्रामवासी चुप हो रहे। ठाकुर साहब ने लम्बी तानी। गज्जू को मालिक की इस स्वार्थ-परता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने उन्हें समझा-बुझाकर ठीक रास्ते पर लाने का विचार किया; किन्तु जब

सुना कि बैनामा लिखा जा चुका, तो उसे लाचार हो अन्य मार्ग का सहारा लेना पड़ा।

उसके सारँगपुर त्यागकर अन्यत्र जाने की बात रेहू के ठाकुरों को मालूम हो गई। उन्होंने कहला भेजा कि ५०) मासिक पर हमारे यहाँ रहना चाहो, तो चले आओ। किन्तु गज्जू ने स्पष्ट कह दिया—"रुपया मनुष्य को नहीं ख़रीद सकता।"

रूपसिंह को गज्जू ने बचपन से पाला था; उस पर उस का असीम-स्नेह था। वह सारँगपुर से जाने के दिन रूपसिंह को गोद में ले बड़ी देर तक न जाने क्या-क्या सोचता रहा। हृदय में अतीत-स्मृतियाँ जागृत हो आईं। क्षण-भर के लिये वह ज्ञान-शून्य हो गया। किन्तु शीघ्र ही सँभलकर समयोचित कर्तव्य-पालन में लग गया। रूपसिंह को कन्धे पर बिठाकर बड़ी देर तक जङ्गल में घूमता रहा; फल-फूल तोड़कर खाता-खिलाता और अपने आमोद-स्थलों से विदा लेता हुआ वह दोपहर को कुटी में आया। वहाँ गाँवभर के बालकों को बुला उन्हें विदाई का भोजन कराया, सिर पर हाथ रख-रखकर आशीर्वाद दिया। रूपसिंह को गले लगा प्रेमपूर्वक मुख-चुम्बन किया। थोड़ी सी विभूति उठाकर ललाट पर लगाई, और एक बार सबकी ओर स्नेह-दृष्टि से देख—चबूतरे को अन्तिम प्रणाम कर, चुपचाप वहाँ से चल दिया। सङ्कोच में पड़ने के भय से उसने अपने चेलों को इसकी सूचना भी नहीं दी।

७

तालाब तैयार हो गया। गाँव के बालक नित्य उठकर उस में क्रीड़ा करते थे। आम का वृक्ष उनके इस कार्य में सहायक था। वे उसकी नीचे झुकी हुई डालियों पर चढ़ते, झूला झूलते और तालाब में कूद पड़ते थे—पनडुब्बियों की तरह तैरते और गोते लगाते थे। ग्रीष्म के सुखद मध्याह्न में कोयल की नक़ल पर उसके साथ कूक-कूककर पथिकों को पुलकित करते और शीतल छाया में बैठकर छोटे बालकों को गज्जू की पुण्य-कथा सुनाते थे। रूपसिंह नेत्रों में जल भर कर निर्जन-वन में गज्जू को पुकारता और उसके अड्डों में जाकर पागलों की तरह प्रलाप करता था, मानो गज्जू उसके साथ है, और वह गज्जू से प्रेम-सम्भाषण कर रहा है। किसी भील ने एक दिन 'गज्जू की माला' कहकर उसे फूलों की माला पहना दी थी। मूर्ख बालक उसे अपने ही गज्जू का वात्सल्य-निदर्शन मानकर बड़े प्रेम से पहने था। पुष्प सूखकर झड़ गए; किन्तु डोरा गले में पड़ा ही था।

एक दिन बालकों में झगड़ा हो गया। रूपसिंह के चपत जमाकर एक सयाना लड़का तालाब में कूद पड़ा। रूपसिंह को क्रोध आगया। वह भली भाँति तैरना न जानने पर भी धड़ाम से तालाब में कूद पड़ा। जो लड़के साथ आए थे, वे

चिल्लाने और दौड़-धूप करने लगे। एक ही मिनट बाद एक और बड़े ज़ोर का धमाका हुआ। कौन गिरा, यह कोई न जान सका। दो ही तीन मिनट में, भील के वेष में, एक मनुष्य "जय बजरंग की" कहकर तालाब से बाहर निकला। मृतप्राय बालक रूपसिंह उसके हाथों में था। जल से निकलते ही भील ने रूपसिंह को उलटा कर पहले पेट का पानी निकाला। अनन्तर कुटी के अन्दर ले जाकर, धोती का टुकड़ा फाड़ कर उसमें रूपसिंह को लपेट कर सुला दिया। थोड़ी देर बाद बालक होश में आया, और उठकर बैठ गया। अब भील को अपनी चोट का ख़याल आया। तालाब में कूदते समय कहीं जल-मग्न आम की जड़ से टकरा कर उसका सिर फट गया था। उससे अविराम रक्त-धारा बह रही थी। साहसी भील ने रक्त धो-धाकर घाव को बाँधा, और लड़खड़ाता हुआ बन की ओर चला गया।

हीरासिंह को जब यह समाचार मिला, तो वह भी दौड़े हुए आए। प्राणाधिक बालक के जीवन-दाता उस भील को उन्होंने बहुत ढुँढ़वाया। किन्तु कुछ पता न चला। दूसरे दिन तालाब से थोड़ी दूर पर, एक घाटी के नीचे, उसी भील का मृत-शरीर पाया गया। पास ही २-३ भील खड़े बिलक रहे थे। हीरासिंह स्वयं जाकर उसका शव उठवा लाए। लोगों ने भी उसे पहचान लिया; यह गज्जू का शव था। भीलों ने

यह भी कहा कि वह उनके साथ पर्वतों के अज्ञात-स्थानों में रहकर दिन बिताया करता था। किन्तु सदा गुप्त-भेष में रूपसिंह के पीछे छाया की नाईं घूमता रहता था। गज्जू की अचल स्वामि-निष्ठा हीरासिंह पर बड़ा गहरा असर कर गई। वह उसके लिये कई दिन तक पछता-पछता कर आँसू बहाते रहे। जिस जगह के ४,०००) लेकर उन्होंने देवालय तक मिटवाने में संकोच न किया था, उसी के उन्होंने ८,०००) दिए, और व्यथित-हृदय को सांत्वना देने के लिए, ठीक उसी जगह, 'गज्जू का चबूतरा' बनवा दिया। गाँव के लड़के जिस प्रकार पहले गज्जू के साथ खेला करते थे, उसी प्रकार अब उसके चबूतरे पर खेलते हैं— कुटी के खण्डहर में नाचते-कूदते और गज्जू की बातें किया करते हैं।

तीसरा आँसू

हा
जी
का
वा

१

उन दिनों हज़ारी बाग़ के जङ्गलों में एक भयानक शेर ने बड़ा उत्पात मचा रक्खा था। यह समाचार सुन-सुन कर लोगों ने उस तरफ़ का जाना ही बन्द कर दिया था। सूबे के हाकिम और सिपाही-प्यादे जब वहाँ जाते, तो दो-चार सशस्त्र जङ्गली मनुष्यों को अपने साथ ले लेते; किन्तु फिर भी जब तक वहाँ से सकुशल न लौट आते, तब तक अपने को काल के मुख में ही समझते थे। जिसको उस तरफ़ का काम दिया जाता, उसके सिर पर मानो मौत नाचने लगती। सिपाही-प्यादे तो इसे साक्षात् यमराज ही का निमन्त्रण समझते थे। जो बदल कर इस जगह भेजा जाता, वही हिम्मत हार कर इस्तीफ़ा दे देता था। कितने ही मुन्शी, दारोग़ा और बाबू इस बला से पिंड छुड़ाने के लिए रोज़ सिविल सर्जन साहब के बँगले की परिक्रमा लगाया करते थे। सफ़ेद दाढ़ी वाले कितने ही जमादारों ने तो अन्धे बन, बोर्ड का मुलाहिज़ा करा पिंड छुड़ाया, कितने ही पुरुष इस नर-रक्त के प्यासे भीषण-प्रकृति

जन्तु के भय से शय्याशायी हो अकाल-मृत्यु के ग्रास बन गये।

उन दिनों मुन्शी शेरख़ाँ का बहादुरी में बड़ा नाम था। अस्तु, आप हज़ारीबाग़ को तब्दील कर दिये गये। आते ही आपने शहर और गाँव-खेड़ों के नामी-नामी शिकारियों को इकट्ठा किया, और सरकार से उनके भोजन-ख़र्च का भी प्रबन्ध करवा दिया। कुछ दिनों तक आप उन ठाकुरों और शेख़ों के साथ अपने सुसज्जित कमरे में बैठे यों ही गप-शप उड़ाते रहे। गाँव-खेड़ों के ज़मींदार और रईस आ-आ कर आपसे भेंट करते, दावतें देते और रक्षा के लिये कातर प्रार्थना करते थे। आप सब को अभय-दान देकर बिदा करते; किन्तु अपने उन प्रार्थियों को किसी प्रकार का कष्ट न होने देते थे। उन के लिये खाने-पीने और चरस-गाँजे का अच्छा प्रबन्ध रखते थे। यह समाचार जब मुहम्मद शेख़ को मिला, तो उन्होंने भी उन से मेल-जोल कर लिया। शेख़ जी चौराहे पर बैठ कर तम्बाकू बेचा करते थे। एक नौकर पास ही गुड़ाकू बनाने के लिये कूटा-पीटी करता रहता था। किंतु बिना दो-चार चण्डू के छींटे जमाए शेख़जी से बैठा नहीं जाता था। इसी से अपने नशाज़ाद भाई रमज़ान ख़ानसामा के साथ आप ख़ाँ साहब के पास तक पहुँच गये थे। जब ख़ाँ साहब को उनकी इस लत का हाल मालूम हुआ, तो आपने उन के लिये शीघ्र ही छींटों का प्रबन्ध करवा दिया।

२

गाँव-खेड़ों में, शेर के विषय में, यह किंवदन्ती फैली थी कि उसका ऊपर का आधा धड़ शेर का सा और नीचे का मनुष्य-जैसा है। वह एक कलियुगी नृसिंह, अथवा ऐसा कहने में आपत्ति हो, तो पुरानी लंका का दानव ही समझा जाता था। लोग उसे बड़ा ज्ञानी, और ज्योतिषी बतलाते थे। जिस की अवधि पूर्ण हो जाती थी, वह उसी को उठा कर ले जाता था। इस काम के लिये उसे यमराज शायद कुछ वेतन भी देते थे। बस, उनका परवाना पाते ही दैत्य-राज भीषण गर्जन करते हुए आते और ख़ास आदमी को लेकर चल देते थे। छदामी गड़रिया सकुटुम्ब एक लम्बे चौड़े आँगन में सो रहा था। गर्मी के दिन थे। दैत्य ने सब को छोड़ छदामी को उठा लिया और छलाँग मार कर चला गया। दो स्त्रियाँ इस तरह बात-चीत कर रही थीं—"दाना (दानव) झगड़ू ग्वाले के लड़के को उठा ले गया और एक ऊँचे टीले पर रख कर उँगलिया गिनता रहा। फिर नाक पर हाथ रख कुछ देर नेत्र बन्द किये बैठा रहा। पीछे जब उसे अपनी भूल मालूम हुई तो वह उसे अपने कन्धे पर रख घर पहुँचा गया।" लालू चौकीदार ने शपथ-पूर्वक पुलिस अफ़सर के सामने कहा कि वह अपने गाँव से रपट लिखाने आ रहा था। जङ्गल में उसे

अपने पीछे किसी के पाँव की आहट सुनाई दी, और 'धम' से किसी की वज्र-मुष्टि उसकी पीठ पर आ पड़ी। पीछे मुड़ कर उसने उस विशाल-काय दैत्यकी भयावनी मूर्ति देखी। चिल्लाने पर मूर्ति एक ओर हटकर अदृश्य होगई। उसने और भी कहा कि मैं महीनों मरघट पर बैठ कर मन्त्र-तन्त्र सिद्ध करता रहा, बड़े-बड़े भयानक भूतों से काम पड़ा; पर ऐसी विकराल मूर्ति मैंने अपने जीवन में कभी न देखी। वह सचमुच एक नर-भक्षी दानव ही है, इसमें अब उसे कुछ भी सन्देह नहीं रहा।

यह तो हुई सर्व-साधारण की बात। अब उन शौक़ीन शिकारियों की बात सुनिये, जिन्हें अपने व्यसन और वेश-भूषा के लिये सदा द्रव्य का अभाव रहता था। जिनका शरीर यथेष्ट भोजन न मिलने के कारण सूख कर कांटे पर तुलने योग्य हो गया था, वे ही अब खूब हृष्ट-पुष्ट हो अखाड़े में दण्ड पेलते दिखाई देते हैं। रसूल मियाँ की 'रसूली' शेख़जी की 'सफ़ेदी', सरदार साहब का 'जूड़ा' और ठाकुर साहब के रेशमी रूमाल में बँधी हुई गोल 'दाढ़ी' अब घण्टों साफ़ होती रहती है। उबटन के मारे नाइयों के नाक में दम रहता है। कपड़ों के लिये धोबी पर रोज़ फटकार पड़ती है। फक्कड़ ख़ाँ पहलवान ने तो एक दिन बेचारे की खोपड़ी ही गंजी कर दी। मुसलमान शिकारी पांचों नमाज़ों में और हिन्दू अपने सन्ध्या, तर्पण एवं आरती में नित्य यही प्रार्थना करते थे—"या खुदा

हे ईश्वर! आप ने ही हम लोगों की जीविका या रिज़क देने के लिये इस कलियुग में दूसरा नृसिंह-अवतार लिया है। अपने इसी रूप से आप सदा-सर्वदा हमारे ब्रह्माण्ड में विराजे रहें। हमें आप ही का बल और भरोसा है।" शेख़जी तो अफ़ीम के नशे में उनके उस भीषण रूप की कल्पना करने लगते थे। उस समय यदि कोई चतुर चित्रकार उस कल्पना के राज्य में पहुँच जाता, तो वास्तव में उन नये नृसिंह भगवान् का एक बढ़िया चित्र तैयार कर लेता। किन्तु कोई करे चाहे न करे, भगवान् को तो स्वयं भक्तों की चिन्ता रहती है। उन्होंने इन भोले-भाले उपासकों को दर्शन देने का मन-ही-मन संकल्प कर लिया।

३

मुंशी शेरख़ाँ अपनी इस सुभट-मण्डली को सरकारी पल्टनों की तरह कभी-कभी शहर में घुमा लाते थे। शिका-रियों की विचित्र सज-धज और ऐंठ को देखकर लोग हँसी के मारे लोट-पोट हो जाते थे। दुकानदार दूकानें बन्द कर यमराज की आंखों में धूल झोंकने वाले बूढ़े मुहम्मद शेख़ की वीर-मूर्ति देखने आ जाते थे। एक स्त्री उनकी ख़िज़ाब की हुई लम्बी दाढ़ी और आंखों के सुरमे को देखकर कहने लगी—"मौत के वक्त इस बुड्ढे को शौक़ सूझा है! एक जगह

बैठ कर अल्लाह का नाम तो लेता नहीं, यों ही अपनी अकड़ में रुस्तम का दादा बना फिरता है।" दूसरी बोली—"और इस रसूल को क्या सनक सवार हुई है! दिन भर बाज़ार में बैठा 'तक-तक तांय-यांय' किया करता था। अब बन्दूक बांध कर तीसमारख़ां बन गया है। देखूँ इसकी 'बुघड़ी' और कितनी लम्बी होती है।" तीसरी बोली—"अरे, और यह मिरचुआ दहात भी क्या इन में मिल गया? बाप रे बाप यह तो पेटी लटका कर रपट लिखाने आता था। गांव में छींके रस्से बनाकर बेचता था।" चौथी बोली—"हां-हां, यही तो ठाकुर मर्दनसिंह कहलाते हैं, जो किर्च बांधे लम्बी मूँछों पर ताव देते अकड़े चले जा रहे हैं।" एक और बुढ़िया ने सरदार साहब की ख़बर ली। किन्तु पीछे शेरख़ां की शेर की सी सूरत देख कर सब नौ-दो-ग्यारह हुईं। लश्कर ठाट-बाट से निकल गया।

इसके दूसरे ही दिन खाँ साहब ने जङ्गल में जाने की तैयारी की। खाने-पीने का सामान, बन्दूक, भाले, तलवार, इत्यादि शस्त्र और ४–६ भीलों को लेकर वह दल बल सहित पास ही के सघन बन में घुस गये। फिर टीका-टिप्पणी चली। रमज़ान गाड़ीवान ने दम लगा कर हलधर हलवाई से कहा—"अब देखता हूँ, शेख़ साहिब शेर मार कर लाते हैं या बटेर। मियां जी को छटी का दूध न याद आ जाय, तो मेरा नाम

रमज़ान नहीं।" बेचारे रसूल बख़्श और मर्दनसिंह पर तो इतनी धूल पड़ी, जितनी शायद घर के निकृष्ट धन्धे करते समय भी न पड़ी होगी। मुन्शी शेरखां ने एक पहाड़ी के नीचे पड़ाव डाल दिया। जङ्गल की ताज़ी हवा लगने से बहादुरों के चेहरे खिल उठे। मन उछल-उछल कर सातवें आसमान पर जा पहुँचा। कोई नदी के पास बैठ कर जल उछालने और उसकी तरङ्गों में सूर्य की सुनहली किरणों का नृत्य देखने लगा। कोई मयूरों का नाच देखता, तो कोई बन्दूक लिये चुपचाप किसी हरिण के पीछे दौड़ता। कोई हरी-हरी दूब पर लेटकर अधखुले नेत्रों से पत्तों की ओट में छिपे हुए सूर्य भगवान् के दर्शन करता, तो कोई भूख से अधीर हो पण्डा जी की ओर कातर दृष्टि से देखता। कोई उबटन मलता; तो कोई कंघी कर क़ैंची से बाल काटता, और कोई शीतल वृक्ष की छाया में बैठ कोयल की कूक से कूक मिलाकर मधुर राग अलापता। एक ओर कपड़ा बिछाकर मुल्लाजी नमाज़ पढ़ने लगे। पं० हनुमानदास ने पूजा की घण्टी बजाई। गोस्वामीजी माला जपने लगे। पण्डाजी की कढ़ाई चढ़ी। भूखा पहलवान पेड़ों पर चढ़ बन्दरों की तरह कूद-कूदकर फल खाने लगा। पर शेख़जी और ठाकुर साहब कुछ और ही धुन में थे। वे चार-छः छींटे जमा, ऊपर से मिठाई खा, तकियों से टिके नशे की उमङ्ग में 'रँगमार' खेल रहे थे। शेख़जी हुकुम का इक्का

फ़ेककर बोले—"यह हमारा सर।" इतने में शेरख़ाँ ने आकर कहा—"अपना यह 'सर' बन्द रखिए। अभी-अभी भीलों ने आकर कहा है कि आदम-ख़ोर शेर इसी जङ्गल में आ गया है, और कल ही ज़िला-मैजिस्ट्रेट यहाँ पड़ाव डाल शिकार खेलेंगे। बस, हम लोगों को भी उनके साथ शिकार करना होगा।" यह सुनकर शेख़ साहब सन्नाटे में आ गए।



उसी रात को ऊँटों पर लदा हुआ साहब का डेरा भी आ पहुँचा। ख़ाँ साहब ने तुरन्त तम्बू खड़ा करवा दिया। दो तीन छोटी-छोटी रावटियाँ भी तान दी गईं। मुन्शीजी ने योग्यतानुसार शिकारियों को नम्बर दे दिए। शेख़ जी का नम्बर पहला रहा, और वही उन सब के सरदार बनाए गए।

सरदार बनाने का एक कारण और भी था। शेख़जी का अतीत बड़ी ही आश्चर्यमयी घटनाओं से भरा हुआ था। उनके पूर्वज 'सूबेदार' कहलाते थे। बादशाही समय से उनको खाने-पीने के लिए एक अच्छी जागीर मिली हुई थी। राजदरबार में उनका अच्छा मान था। प्रजा के तो वह मानों प्राण ही थे। कहते हैं उन दिनों सूबेदार परिवार पर लक्ष्मी देवी की ऐसी कृपा थी कि रुपए कूंडों में भरे जाते थे। नौकर-चाकर जूतों में मोम लगा कर उनमें रुपए चिपका कर

ले जाते थे। मुहम्मद शेख़ के पिता इब्राहीम बड़े ही रसिक थे। आपने कई तालाब खुदवाए, बाग़-बग़ीचे लगवाए, कई आलीशान मकान और सुन्दर बैठकख़ाने बनवाए। एक बड़ी मस्जिद की नींव डाली, और अपने ही ख़र्च से उसे दो वर्ष में तैयार करवा दिया। और बटेसर से आप घोड़ों और बैलों की सुन्दर जोड़ियाँ लाए थे। जोड़ के जानवर ख़रीदने का आपको बड़ा शौक़ था। उनके लिए आप पानी की तरह रुपया बहाते थे। पाँच-पाँच सौ रुपए के चार घोड़े और चार-चार सौ की आठ बैलों की जोड़ियाँ आपके यहाँ बँधी रहती थीं। उन्हें आप सिर्फ़ अपनी ही बग्घी में जोतते थे, सो भी वर्ष में दो तीन बार। उनसे और कोई काम नहीं लिया जाता था, वे बँधे-बँधे खाते थे। उनके लिये बड़ी-बड़ी रूधें मोल ली जाती। ज्वार के खड़े खेत कटवा कर कर्बी तैयार कराई जाती थी। दो साईस और चार चरवाहे दिन-रात उनकी देख-रेख करते रहते थे। रुपए पैसे का लेन-देन भी इसी प्रकार होता था। लिखा-पढ़ी कुछ नहीं, ख़ाली ज़बान का जमा-ख़र्च। आपने न कभी इसके लिये मुनीम-गुमाश्ते रक्खे, और न बही-खाते। किन्तु विधि का विधान अमिट है। उसके संकेत से प्रकृति-महारानी विश्व के बृहन्नाटक का समय-रूपी पर्दा बदलती रहती है। वृद्ध इब्राहीम का देहान्त होते ही सूबेदार-परिवार पर दुर्दैव का कोप फट पड़ा। आपके

सुलेमान, सुभान और मुहम्मद नाम के तीन पुत्र थे। मुहम्मद सबसे छोटा था। तीनों निरक्षर भट्ट! माता-पिता के हज़ार कोशिश करने और सिर पटकने पर भी उन्होंने एक अक्षर न सीखा। शेख़ इब्राहीम ने एक-एक अक्षर का मूल्य एक-एक रुपया तक लगा दिया। किन्तु कोई भी मौलवी-मास्टर इन उद्दंड लड़कों को पढ़ा न सका। एक मौलवी साहब तो पिटते-पिटते बचे। उन्हें घोड़ों पर चढ़ने और शिकार खेलने के सिवा और कुछ न सूझता था। सयाने हो जाने पर भी तीनों ज़मीदारी के काम-काज से पूर्णतया अनभिज्ञ थे। निदान इब्राहीम के बाद तीनों भाइयों में झगड़ा शुरू हुआ। मँझले सुभान ने यौवन की उमङ्ग में एक विचित्र कार्य कर डाला। होली के मौसिम में बनारस से दो रंडियाँ बुलाई गई थीं। आप उन पर लट्टू हो गए, और दोनों को एक अलग बँगले में रख छोड़ा। यह देख बड़े मियाँ जलकर ख़ाक हो गए। आप सीधे अखाड़े में जा बैठते और सुभान मियाँ को दिल खोलकर गालियाँ देते थे। देखा-देखी मुहम्मद को भी छींटे पीने की लत पड़ गई। बस, गाँव-गेराँव बिकने लगे। खेती-पाती नष्ट हो गई। औरतों में झगड़ा खड़ा हुआ। सुभान की स्त्री रूठकर मायके चली गई। मियाँ साहब जामे से बाहर हो गए। जुदा होने का प्रस्ताव उपस्थित किया। सबने इसे स्वीकार कर लिया। बस्ती के महाजन जमा हो गए।

घर-द्वार, गाँव-गन्ना और सीर—सबका बँटवारा हो गया। बैल बेचकर रुपए बाँट लिए गए। किन्तु घोड़ों पर झगड़ा हो पड़ा। बड़े मियाँ 'ताज' नामक घोड़े को बहुत चाहते थे। पर उसकी सानी के दो और घोड़े नहीं मिलते थे। समझौते के लिए बहुत चेष्टा की गई। किन्तु सब व्यर्थ। बहादुर मुहम्मद ने तलवार उठा उसके तीन टुकड़े कर दिए। यह वीभत्स दृश्य लोगों से देखा न गया। वे वहाँ से चुपचाप खिसक गए। अब ज़र-ज़मीन के लालची स्वार्थी-गिद्धों की बन आई। उन्होंने षड्यन्त्र रचकर सुलेमान को मरवा डाला। सुभान-मियाँ अपनी प्रेमिकाओं को लेकर सटक गए। रह गए छोटे मुहम्मद शेख़, उन पर डाका डलवा दिया गया। बहादुर मुहम्मद बड़ी वीरता से लड़े। किन्तु डाकुओं की संख्या अधिक थी। अन्त में हारकर भाग खड़े हुए। डाकुओं की तलवार से उनका बायाँ अँगूठा कट गया। बस, सूबेदार-परिवार का भाग्य-सूर्य सदैव के लिये अस्त हो गया। उसका मान-संभ्रम सब नष्ट हो गया। शेख़ मुहम्मद के तीन लड़के थे। ये युवा होकर सेठ-साहूकारों और ज़मीदारों के यहाँ पेट के लिये मामूली नौकरी करने लगे। शेख़जी ने हज़ारी बाग़ आकर तम्बाकू की दूकान खोली, और किसी तरह अपनी ज़िन्दगी बिताने लगे। अस्तु।

दूसरे दिन सवेरे ही ज़िला-मैजिस्ट्रेट साहब आ धमके।

ख़ाँ साहब ने सबसे पहले उनसे शेख़जी का परिचय कराया। साहब ने प्रसन्न होकर हाथ मिलाया। शेख़जी बोले—"बन्दा अपनी अमलदारी में कई मर्त्तबा इन खूँख़ार जंगली जानवरों से लड़ चुका है। ऐसे जानवरों को देखकर ख़ौफ़ के बजाय बन्दे को एक क़िस्म की दिली मसर्रत हासिल होती है। बेअदबी मुआफ़ हो, तो बन्दा कुछ अर्ज़ करे।" साहब ने प्रसन्न होकर आज्ञा दे दी। शेख़जी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—"आज का पहला मोरचा बन्दे को दिया जाय।" साहब ने हँसकर कहा—"अच्छा, आपका कहना मंज़ूर।" बस, जहाँ-तहाँ शिकार की तैयारियाँ होने लगीं।

५

शाम को तीसरे पहर वृक्षों और झाड़ियों से ढकी एक ऊँची पहाड़ी के नीचे 'हाँका' कराया गया। शेर उसी झाड़ी में छिपा हुआ था। धम् से नीचे की गहरी खाई में जा गिरा। उसकी बादल के समान गरज से बहुतेरों की धोती बिगड़ गई। यह ख़न्दक भी झाड़-झंखाड़ से भरा हुआ था। शेर ऐसी चालाकी से गिरा कि किसी को उसका एक बाल तक देखने को न मिला। लोग उसको देखने की लालसा लिए हुए हताश हो लौट आए। उस समय गड्ढे में छिपे हुए शेर की ओर झाँकने का साहस शिकारियों को भी न हुआ।

शेख़जी इधर-उधर झाँक-फूँककर कुछ मंत्र सा पढ़ने लगे, और फिर लौट कर साहब से बोले—"हुज़ूर, 'ग़ारा' (मचान) बँधवाया जाय। मैं एक बड़े दरख़्त पर, जो अच्छे मौक़े पर है, निशान बना आया हूँ। उसी पर बैठ कर शिकार करूँगा।" निदान, साहब की आज्ञा से निर्दिष्ट स्थान पर ग़ारा बँधवाया गया। शेख़ जी बन्दूक़ लेकर जा डटे। अन्यान्य शिकारी भी पार्श्वचरों की तरह उन्हें चारों ओर से घेर कर वृक्षों पर जा चढ़े। साहब शेरख़ाँ के साथ उसी ख़ंदक के पास बैठ गए। शेख़जी शिकार की उमङ्ग में आज कुछ अधिक पी गये थे। बैठते ही पीनक आ गई। फिर क्या था; वह स्वर्ग की सैर करने लगे। इन्द्र ने आपको बुलाने के लिये ऐरावत भेजा। आप उस पर सवार होकर सीधे इन्द्रलोक जा पहुँचे। 'इन्द्र का अखाड़ा' आप कई बार सुन चुके थे। सब जानते थे। सब्ज़ परी ने आकर आपको सलाम किया। नाच होने लगा। आप रह-रहकर दाढ़ी पर ख़िज़ाब मलते और कहते थे—"निगोड़े बालों ने सब चौपट कर दिया।" इतने में गाना समाप्त होगया। इन्द्र ने शेख़ जी का हाथ पकड़कर कहा—"राजा जनक ने धनुषयज्ञ रचा है; इच्छा हो, तो मेरे साथ चलिए।" आप बोले—"लेकिन जनाब, पहिले हमारी दाढ़ी काली कर दीजिए, और गालों की झुर्रियाँ मिटाकर जवान बना दीजिए। फिर साथ चलने को कहिए। कोई साधु या फ़क़ीर

होता, तो यों ही अच्छा लगता। मगर इस हालत में तो यार लोग आप तक को न छोड़ेंगे, बुरी तरह पीछे पड़ जायँगे। व्याह- शादी का देखना जवानों ही को अच्छा लगता है। बूढ़ों को कुछ भी लुत्फ़ नहीं आता।" यह सुन कर इन्द्र ने सब्ज़ परी की ओर इशारा किया। उसने अमृत लाकर शेख़जी पर छिड़क दिया। बस, आप बीस वर्ष के हट्टे-कट्टे जवान बन गए, और हँसने लगे। अब विमान पर बैठ कर जनकपुर पहुँचे। धनुष तोड़ने के लिये "देव-दनुज धरि मनुज-सरीरा" विपुल वीर आए थे। सब योद्धा उठे, और अपना-अपना ज़ोर आज़माने लगे।

इतने में पास की झाड़ी में एक धीमी गुर्राहट हुई, और शेर उछल कर झट से शेख़जी के वृक्ष के नीचे आ पहुँचा। उस आवाज़ ने शेख़जी का मज़ा किरकिरा कर दिया। आप समझे, परशुराम आ गए। चट चिल्ला उठे—"हाँ, हाँ, अभी धनुष कहाँ टूटा!" आवाज़ सुनकर शेर एक छलाँग में फिर उसी ख़ंदक में जा गिरा। लोग चिल्लाहट का कुछ मत-लब न समझ शेख़जी के पास दौड़े गए, और बोले—"आपने शोर करके शेर को भगा दिया!"

शेख़जी कहने लगे—"भई, मुझे तो मुतलक़ ख़याल न था कि वही शेर आगया है। मैं तो किसी दीगर शेर को ग़ारे के पास जाता देख चिल्लाया था; क्योंकि मेरा शिकार तो वही शेर

है, जिसका आधा जिस्म इंसान के मानिन्द है।" यह सुनकर साहब हँस पड़े। बोले—"शेर को हमने ग़ारे में जाते देखा है। वह मामूली शेरों-जैसा ही है। आप बेख़ौफ़ गोली मारिए।" शेख़जी बोले—"तब आज का मौक़ा तो हाथ से गया। देखता हूँ, कल बचाजी मेरे हाथ से कैसे बचकर जाते हैं।"

दूसरे दिन फिर शेख़जी, बन्दूक बाँधकर शिकार करने चले। आपके साथी भी यथा-स्थान आ डटे। रसूलबख़्श बोले—"देखो शेख़जी, शेर अगर आपके दरख़्त के नज़दीक आया, और आपने गोली न चलाई, तो मैं बिला पसो-पेश उसपर फ़ैर करूँगा। फिर आप बुरा न मानियेगा। उसका इस तरह बेलाग निकल जाना मुझसे देखा न जायगा। आप तो जानते ही हैं, मेरा निशाना कभी चूकता नहीं।" ठाकुर साहब भी कुछ कुड़कुड़ाए। मगर सरदार साहब ने ठण्डा कर दिया। इस पर रसूल मियाँ गरजकर बोले—"आज शेर न मरा, तो हाकिम के सामने मुँह दिखलाने क़ाबिल न रहेंगे। ज़्यादा सब्र नहीं कर सकते।" सरदार साहब बोले—"तो जैसा आप मुनासिब समझें, करें। मेरा कहना यही है कि काम चुपचाप होना चाहिए। दंगा-फ़साद से क्या फ़ायदा?" शेख़जी बोले—"खुदा के लिये थोड़ा सब्र और करो। मेहरबानी करके चुप हो जाओ। शेर आया ही चाहता है।"

रसूल साहब चुप हो गए। शेख़जी अपना मसाला साथ

ही लाए थे। वहीं चढ़े-चढ़े छींटे पी लिए। रसूल मियाँ का दिमाग़ बिगड़ रहा था। साहब के डर से उन्होंने दो दिन से गोला नहीं गटका था। इसी से बात-बात पर चिड़चिड़ा उठते थे। मन-ही-मन कहते थे—"या खुदा, शेर मर जाय, नहीं तो इस रसूली पर ख़ाक पड़े बिना न रहेगी।" पीर को सवा सेर शीरनी (मिठाई) चढ़ाने की मन्नत की, और आकाश की ओर देखने लगे। आँखें डबडबा आईं। ठीक इसी समय ग़ारे के पास ही बड़े ज़ोर का धमाका हुआ। शेख़जी का बटुआ खिसककर शेर के सिर पर जा गिरा। साथ-ही आग की छोटी-सी चिनगारी भी उसकी मूँछ से छू गई। वह वज्रवत् घोर निर्घोष करता हुआ ऊपर को उछला, और ग़ारे पर जा गिरा। इसी समय एक विचित्र घटना घटित हुई। शेख़जी अचेत होकर वृक्ष पर से लुढ़के, और धम् से शेर के ऊपर आ पड़े। खुशक़िस्मती से बन्दूक़ हाथ ही में रही। वह सीधी आपकी वज्रमुष्टि में बँधी नीचे चली आई थी। धक्का लगने से घोड़ा गिर पड़ा, और गोली शेर के ब्रह्मांड को फोड़ती हुई बाहर निकल गई। उसी क्षण उसका प्राण-पखेरू उड़ गया। अब कहीं शेख़जी को होश आया। आपने टटोलकर देखा, तो अपने को शेर पर सवार पाया। चट उतरकर शोर-गुल मचाने लगे। उधर से शिकारियों का दल हर्ष-रव करता हुआ आ पहुंचा। साहब भी दूर से यह तमाशा देख रहे थे;

मारे हँसी के लोट-पोट हो गए। यारों ने मुँह में रूमाल लगा हँसी रोकी। लैम्प शेर के पास लाया गया। देखते ही शेख़जी बोल उठे—"हँह, यह तो कोई दूसरा ही शेर निकला। इसका आधा धड़ इन्सान-सरीखा कहाँ है? मुझे बड़ा धोखा हुआ।" शेख़जी की बात सुन सब खिलखिलाकर हँस पड़े। साहब ने पीठ ठोककर शेख़जी से कहा—"धोखा नहीं हुआ, वही आदम-ख़ोर शेर मारा गया है। आपने बड़ी बहादुरी का काम किया।" अन्तिम वाक्य में कुछ हास्य एवं व्यंग का सम्मिश्रण था। शेख़जी उसे नहीं समझ सके, और सलाम ठोक कर एक तरफ़ खड़े हो गए।

६

साहब के चले जाने पर एक दिन शेख़जी के यहाँ बधाई देने के लिये सब लोग मिलकर गए। सबसे पहले मुन्शी शेरख़ाँ ने कहा—"शेख़ साहब, आपने उस ख़ूँख़ार जानवर को मारकर ग़रीब रिआया को तबाही से बचाया है। आपकी तारीफ़ बयान के बाहर है। हम लोगों की भी आपने जान पर खेल कर एक ऐसी ज़बर्दस्त मुसीबत की गिरफ़्त से हिफ़ाज़त की है, कि आपका शुक्रिया अदा करने के लिए लफ़्ज़ ही नहीं मिलते। आपके एहसान का बदला हम ता-उम्र नहीं दे सकते।"

रसूलख़ाँ मुँह बनाकर बोले—"वाक़ई बड़ी बहादुरी का काम है।"

सरदार साहब जूड़ा खोलते हुए बोले—"जिस वक़्त मैं शेख़ साहब को देखता हूँ, उस वक़्त ऐसा मालूम होता है, मानों लफ़्ज़ 'बहादुर" आपकी चौड़ी पेशानी में हर्फ़-ब-हर्फ़ मौजूद है।"

शेरख़ाँ मुसकिरा कर बोले—"वल्लाह, आपने तो कमाल कर दिया! मगर शेख़ साहब, एक बात अभी तक हमारी समझ में नहीं आई।"

शेख़जी—"फ़रमाइए जनाब!"

शेरख़ाँ—"यही कि आप शेर के पास नीचे कैसे आ गए।"

शेख़जी—"जनाबमन, आप अगर मौक़े पर पूछते, तो मैं इससे ज़्यादे खुलासे में बतलाता। मगर तो भी मुख़्तसिर में कहता हूँ। सुनिए, जिस वक़्त जानवर शिकार के पास पहुँचा, उसी वक़्त मैंने बन्दूक़ ठीक कर ली थी। मगर, भई, वह भी बला का जानवर था। उसने मेरा इरादा समझ लिया। वाक़ई बड़ा नजूमी था। बस, ज्यों-ही उसने उछल कर फिर से रफ़ू-चक्कर होने का इरादा किया, त्यों-ही मैं कूदकर उस पर सवार हो गया।"

शेरख़ाँ छाती फुलाकर बोले—"अगर कोई जहान् में शेख़ साहब की सानी का बहादुर दिखला दे, तो मैं उसे ता-उम्र गुलामी का इक़रारनामा लिख दूँ।"

रसूलबख़्श बोले—"और आज के तमाम गज़टों में आपकी इस लासानी बहादुरी की दाद छपी है।"

शेख़जी अभी तक चुप बैठे थे। अब आपसे न रहा गया। बोले—"क्या आपने कोई गज़ट देखा है?"

रसूल—"जी हाँ, एक नहीं, कई।"

और जेब से एक पर्चा निकाल कर रख दिया।

शेरख़ाँ ने उसे ज़ोर से पढ़ा, और बोले—"अब देखें, कलक्टरी से क्या हुक्म आता है।"

इसके बाद सब लोग उठकर चलने लगे। शेख़जी ने रोक कर ज़बरदस्ती मिठाई खिलाई। पान इलायची दे अपने हाथ से इत्र लगाया, और एक अच्छी दावत देने का वादा किया।



दूसरे दिन ख़ाँ साहब हाथ में एक परवाना लिए पहुँचे, और बोले—"लो शेख़जी, आपकी तक़दीर खुल गई। मगर साहब, थोड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ेगी।"

शेख़जी फूलकर कुप्पा हो गए। बोले—"आख़िर मैं भी तो सुनूँ?"

ख़ाँ साहब—"बस, आपका काम फ़तेह है। आपको एक नई जागीर दिलवाई जा रही है। कसर सिर्फ़ एक बात की है।"

शेख़जी—"किस बात की ?"

ख़ाँ साहब—"आपको फिर से शादी करनी पड़ेगी।"

शेख़जी ख़ाँ साहब की ओर देखकर हँसने लगे। बोले—"यार, बुढ़ापे में यह इल्लत न लगती, तो अच्छा था।"

ख़ाँ साहब—"फिर आपका क्या इरादा है ? यह सुनहरी मौक़ा यों ही जाने दीजिएगा ?"

शेख़जी—"नहीं, आप जैसी सलाह देंगे, वैसा ही करूँगा।"

ख़ाँ साहब—"तो फिर लीजिए, हाथ मिलाइए। बन्दे ने सब ठीक कर रक्खा है।"

शेख़जी—"एँ, सब ठीक ! क्या कोई झगड़ा बना लाए ? मैं तो पहले ही समझ चुका हूँ, बुढ़ापे में दिल्लगी करवाए बिना न रहोगे।"

ख़ाँ साहब—"अजी जनाब, अच्छा माल हाथ लगने वाला है।"

शेख़जी—"तुम तो यार, आसमान में टाँके लगा सकते हो। लाए होगे राजा इन्दर की सब्ज़ परी !"

शेरख़ाँ—"सब्ज़ परी नहीं, लाल परी है। चलिए, दिखला दूँ।"

ख़ाँ साहब सारा स्वांग ठीक कर आए थे। शेख़जी को ले जाकर दिखला दिया। बीबी घूँघट काढ़े बैठी थीं। किन्तु

शेख़जी की तेज नज़र से न बच सकीं। देखकर लट्टू हो गए। ख़ाँ साहब के कान में पूछने लगे—"कहाँ रहती हैं ? क्या नाम है ?"

ख़ाँ साहब ने धीरे से कुछ कह दिया।

मौलवी साहब ने आकर शादी का दिन ठीक किया। बढ़िया पोशाक बनवाई गई, रसूल मियाँ ने सबसे आगे बढ़कर शेख़जी को दूल्हा बनाया। ख़ाँ साहब ने ख़ुद कल्मा पढ़वाया। बड़े ठाट-बाट से बूढ़े शेख़जी का निकाह हुआ। यारों ने ख़ूब दावतें उड़ाईं। फ़क़ीरों को ख़ाना खिलाया गया। दस दिन तक नाच-रंग की धूम रही। इस काम में शेख़जी की दूकान तक ठिकाने लग गई। पर उस समय उन्हें परवा ही किस बात की थी। बड़ी भारी जागीर हाथ आने की ख़ुशी में वह फूले न समाते थे। किन्तु बीबी से भेंट न हो सकी। वह दूसरे ही दिन अपने पीहर पहुँचा दी गई। बुढ़ापे की अदम्य भोग-लालसा मन ही में दबाए हुए शेख़जी आनन्दोत्सव में सम्मिलित हुए।

इसके एक महीने बाद शेख़जी को किसी ने बाहर से पुकारा। आपने निकल कर पूछा—"कौन है ?" रास्ते में डाकिया खड़ा था, बोला—"सूबेदार शेख़ मुहम्मद कहाँ रहते हैं ?" आप अकड़ कर बोले—"जनाब, मेरा ही नाम सूबेदार शेख़ मुहम्मद है। क्या कुछ काम है ?"

डाकिए ने कहा—"साहब, आपके नाम एक मनीऑर्डर और एक पारसल है। सुनते ही आप खिल गए, मानों आसमान का चाँद हाथ आ गया हो। बोले—"लाओ, कहाँ है ?"

डाकिया—"पहले यहाँ ५००) पाने के दस्तख़त कीजिए।"

शेख़जी—"मैं पढ़ा नहीं हूँ।"

डाकिया—"तो जनाब, बाएँ हाथ का अँगूठा लगाइए।"

शेख़जी—"अँगूठा मेरा कटा हुआ है।"

डाकिया—"तब तो रुपए और बीमा पारसल आपको नहीं मिल सकता।"

शेख़जी—"क्यों ?"

डाकिया—"क़ायदा नहीं है।"

उत्तर सुनकर शेख़जी जामे से बाहर हो गए। बोले—"पाँच-पाँच सौ रुपए हमारे बाबाजान रोज़ ख़ैरात कर देते थे। तू न जाने कहाँ का भुक्कड़ है।"

डाकिया बिगड़कर बोला—"क्या ठर्रा जमाकर आए हो म्याँ ? ज़रा ज़बान सँभाल कर बोलो ! अब तो आपका पारा १६० डिग्री तक पहुँच गया। दोनों में कहा-सुनी होने लगी। लोग जमा हो गए। आख़िर रसूलबख़्श ने आकर बीच-बचाव कर दिया। शेख़जी का हाथ पकड़ कर बोले—"आख़िर माजरा क्या है जनाब ?"

शेख़जी बोले—"कुछ नहीं, बीबी ने रुपए और अँगूठी भेजी है। यह बेवकूफ़ देता नहीं।"

रसूल—"कौन बीबी?"

शेख़—"अजी वही मोती बीबी!"

रसूल—"वह कौन मोती बीबी?"

शेख़—"जनाब, आप तो बिलकुल अनजान ही बन रहे हैं। अजी वही मेरी बीबी, जिसके साथ उस दिन निकाह हुआ था।"

बड़ी मुश्किल से रसूल मियाँ की हँसी रुकी। सँभलकर बोले—"तो क्या हर्ज है। डाकख़ाने से ले आइए। मुन्शी अच्छा आदमी है। आपको कुछ भी दिक़्क़त न होगी। चलिए, मैं भी साथ चलता हूँ।"

दोनों डाकख़ाने गए। मगर कटे हुए अँगूठे ने मज़ा किरकिरा कर दिया। ज़ामिनदार लाने के लिये दौड़े। लेकिन कोई राज़ी न हुआ। ख़ाँ साहब के पास गए। मगर वह दौरे पर थे, मुलाक़ात न हुई। एक भले आदमी के यहाँ गाना हो रहा था। गायिका गा रही थी—

"मैं कासों भेजूँ सँदेस; पिया तेरे लम्बे-लम्बे केस।"

सुनकर शेख़जी पारसल और रुपयों की बात भूल गए। घण्टों वहीं खड़े-खड़े गाना सुनते रहे। वाह! कैसी सुरीली तान है। चेहरा-मोहरा भी कैसा सजीला-रसीला है। चितवन

भी बड़ी बाँकी है। मालूम होता है, किसी चतुर-चित्रकार ने अपने हाथ से गढ़ा है।" बड़ी मुश्किल से शाम तक घर पहुँचे। नौकर बोला—"मियाँ, अभी-अभी एक छोकरा यह ख़त दे गया है।" मियाँजी ने पास ही एक बोहरे की दूकान में उसे पढ़वाया। मालूम हुआ, कल की गाड़ी से बीबी आ रही हैं। बस, आप उछल पड़े। बोले—"अब मार ली बाज़ी! चलो, बीबी को ले आवें।"

रात बड़ी बेचैनी में कटी। सवेरे आप सज-धज कर स्टेशन की ओर चले। फ़र्स्ट और सेकिंड क्लास के कुल कमरे देख डाले, मगर बीबी को न पाया। इतने में एक देसी रमणी पीछे के कमरे से निकल कर बाहर आई। नौकरों ने सामान सँभाला। शेख़जी का चित्त चञ्चल हुआ। हाव-भाव देखकर समझ गए, यही बीबीजान हैं। स्त्री बहुमूल्य वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित थी। रूप-रंग में स्वर्ग की सब्ज़ परी से कुछ कम न थी। बस, शेख़जी ने नौकरों से सवाल पर सवाल करना शुरू कर दिया। वे बेचारे घबरा गए। चट एक ताँगा कर उस पर स्त्री को बिठला सराय की ओर जाने लगे। ज्यों-ही कोचवान ने घोड़े की पीठ पर हंटर जमाया, त्यों-ही शेख़जी पीछे से झाँकने लगे। उनका यह व्यवहार नौकरों को बुरा लगा। एक दढ़ियल जवान ने आपको धक्का देकर नीचे खाई में गिरा दिया, और ताँगे के साथ चला गया। शेख़जी धूल

झाड़कर उठ बैठे। रसूल मियाँ, जो पास ही खड़े यह तमाशा देख रहे थे, बहुत शरमाए। उन्हें अफ़सोस भी हुआ। पास आकर बोले—"शेख़जी, यह सब गोरख-धन्धा है। आप इसमें न पड़ अब अलग बैठकर ख़ुदा का नाम लें। यह भानमती का खेल उन्हीं ख़ाँ साहब का खेला हुआ है। उन्होंने आपको पूरा उल्लू ही बनाकर छोड़ा। ख़ैर, अब भी वक़्त है। जो कुछ हुआ, उस पर तौबा करो, और ख़ुदा की इबादत में वक़्त सर्फ़ करो। आपके लिये यही बहतरीन् रास्ता है।"

इतना कहकर रसूल मियाँ चले गए। शेख़जी कुछ देर वहीं खड़े-खड़े सोचते रहे। क्या सोचा, हम नहीं कह सकते। लेकिन इसके बाद देखा कि दूकान पर आए, और माल-असबाब फ़क़ीरों को लुटा हज करने चल दिए। चलते वक़्त आपने किसी से मुलाक़ात भी नहीं की।

८

शेख़जी को गए कई वर्ष बीत गए। किसी को उनकी ख़बर न मिली। यहाँ तक कि धीरे-धीरे उनकी याद भी भूलने लगी। संसार से उनका नाता टूट चुका था। शेरख़ाँ अपने आमालों पर कुछ दिन तक पछताते रहे। फिर संसार के घोर कोलाहल में उनका वह शोक-निःश्वास समुद्र में फेंके हुए पत्थर की तरह शीघ्र ही विलीन हो गया। धीरे-धीरे

उस नाटक के सभी पात्र इस कारुणिक अभिनय का यवनिका-पतन कर संसारके अविराम एवं अनन्त कोलाहल-पूर्ण समारोह में अन्तर्द्धान हो गए। ठीक ही है, समय किसकी अपेक्षा करता है। वह उस प्रखर-धारा के समान है, जिसे लोग बड़ी-बड़ी चट्टानें डालकर रोकना चाहते हैं किन्तु वह उन्हें अपने अनन्त-गर्भ में डुबा पुनः पूर्ववत् स्वच्छन्द-गति से बहने लगती है। छोटे-छोटे बालक बहते हुए जल को हाथों से रोकते हैं, किन्तु वह फिर पूर्ववत् बहने लगता है; रोक का कुछ भी चिह्न वहाँ शेष नहीं रह जाता।

एक दिन ख़ाँ साहब कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक बूढ़ा फ़क़ीर मिला। फ़क़ीर ध्यान लगाए बैठा था। ख़ाँ साहब को देखकर उसने इशारे से पास आने को कहा। ख़ाँ साहब को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बड़ी देर तक टकटकी लगाए उसकी ओर देखते रहे। अन्त को कटे-अँगूठे ने उनका शक मिटा दिया। वह घोड़े पर से उतर कर हाजी मुहम्मद साहब के के क़दमों पर गिर पड़े, और गिड़गिड़ा कर रोने लगे। हाजीजी ने रोक कर कहा—"नहीं ख़ाँ साहब, आप भूल रहे हैं। आप उन गुज़री बातों का ख़्याल करके शायद अफ़सोस कर रहे हैं। मगर जनाब, देखिए, आप ही की नसीहत से इस दर्जे तक पहुँच पाया हूँ। नहीं तो दीन-दुनिया खोकर भी मैं उसके झूठे इशरतों का ख़्वाब देख रहा था, इस बेवकूफ़ी की भी कोई हद है! उस वक़्त मैं दुनिया का मोहताज था, अब पाक-ख़ुदा का मोहताज हूँ।"



१

बात बहुत पुरानी है। उन दिनों सदर क़ानूनगो ही मालगुज़ार-ज़मींदारों के हर्ता-कर्ता थे। खूब आय होती थी और आदर-सत्कार का तो कहना ही क्या था, जहाँ से निकल जाते थे हज़ारों सिर ज़मीन तक झुक जाते थे। पूरे ४० वर्ष नौकरी करने पर भी मन की हवस पूरी नहीं होती थी। यही इच्छा रहती थी कि दो-चार वर्ष की मियाद और बढ़ जाय—इसके लिए हाकिम-सूबों की खुशामद करते, डाक्टरों को मनाते, ख़िज़ाब लगाते और झुर्रियाँ मिटाने तथा रौनक़ लाने के लिए चेहरे पर गुलाबी साबुन मलते थे।

पण्डित बैजनाथ पांडेय एक दरिद्र कुल में उत्पन्न हुए थे।

पिता किसानी करते थे। ज़मीन अच्छी थी और हक़ मालिक-मक़बूज़ा था। इसी से परिवार बड़ा होने पर भी किसी तरह जीविका चलती जाती थी। बैजनाथ जी जब पढ़-लिख कर तैयार हुए तब लोगों ने उन्हें नौकरी करने की सलाह दी। सौभाग्य से सदर क़ानूनगो की जगह ख़ाली हुई और चेष्टा भी की, परीक्षा पास होने के कारण वह जगह उन को मिल गई। यह शुभ-सम्वाद सुन वृद्ध पिता के नेत्रों में जल भर आया। वे पुत्र को हृदय से लगा गद्गद् कण्ठ से बोले—"बैजू! तुम्हारी माँ तुम्हें कुल का दीपक कहा करती थीं, यह भविष्य-वाणी सत्य हुई। तुम वंश के सच्चे भगीरथ निकले। तुम्हारी ऐसी उन्नति देख इस वृद्ध की चिर-व्यथित आत्मा सनाथ (सन्तुष्ट) हो गई। जब-तब यही सोचा करता था कि ज़िन्दगी हाय-हाय करके बीती। पेट के लिये सब कुछ देखा, सुना और सहा। अन्तकाल में भी दीन-बन्धु भगवान् क्या शान्ति के दर्शन न करायेंगे?" कहते-कहते वृद्ध का गला रुँध गया। उन्होंने कुछ देर मौन रह कर और आँसू पोंछ कर स्नेह-सिक्त दृष्टि से पुत्र को ओर देखते हुए फिर कहा—"पर बेटा बैजनाथ! भगवान् दीन-दुखियों पर सदा दया करते हैं, यह उन की बान है। उन्होंने मेरी—मुझ असहाय की—बात रख ली। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं रही तुम्हारा मुख देख कर सुख से मरूँगा।"

अनन्तर गाँव भर में मङ्गलाचार मनाया गया। ब्राह्मण-भोजन हुआ। दीन-दरिद्रों को कपड़े और रुपये बाँटे गए। इष्ट-मित्रों ने आ-आकर बधाइयाँ दीं। गाँव के नम्बरदार दल-बल सहित मिलने आये और पांडेय जी का सौजन्य प्राप्त कर उत्सुक मन से घर लौटे!

२

छोटे-भाई मोहन पांडेय शरीर से हृष्ट-पुष्ट किन्तु निरक्षर भट्ट थे। खेती-पाती खूब जी लगा कर करते थे। स्वयम् हल चलाते थे। आधी रात से बैलों और भैंसों को 'पहट' चराते और दिन को 'बीड़' में छोड़ देते थे। सिरपर फटी सी पगड़ी बाँधते और जाँघों के ऊपर से कस कर धोती पहनते थे। दिन भर उघारे बदन गाय-बैल के पीछे लठ लिए घूमा करते थे। लड़ने-झगड़ने में भी पक्के थे। किसी की क्या मजाल जो मवेशी लेकर आप के खेत के पास से निकल सके। यदि भूल से किसी का ढोर वहाँ से निकल जाता तो आप उस के मालिक पर भूखे व्याघ्र की नाईं टूट पड़ते थे। उसे कान पकड़ कर उठाते-बिठाते और गुरैया बाबा की शपथ लेकर छोड़ते थे। अवकाश के समय बाहर ड्योढ़ी पर बैठे 'ढेरा' फिराया करते थे और अपने साथियों को चूना मिली देशी तम्बाकू बांटते थे।

इस शुभ-समाचार को सुन आप आनन्द से विह्वल हो उठे। इष्ट-मित्रों में बैठ कर आप ने खूब वंशी बजाई। बैलों के सींग मढ़वा दिये। 'सैर' में दिवाली का सा उत्सव मनाया। हरदौल लाला के चबूतरे को फिर से नया करवा दिया। क्वाँरी कन्याओं और सधवाओं को मिठाई बाँटी। एकादशी का व्रत कर श्री सत्यनारायण की कथा सुनी।

३

बैजनाथ जी नौकरी करने लगे और मोहन महाराज ने खेती पर एकाधिपत्य जमाया। पिता बड़े ही शान्ति-प्रिय थे। उन्हें यथाशक्ति दङ्गा-फ़िसाद से बचाये रहते थे। मूर्ख, गँवार और उजड्ड कह कर उनकी भर्त्सना करते और लोगों के दिल न दुखने देते थे। बेचारे मोहन महाराज मन मार कर रह जाते थे, पिता से कुछ कह न सकते थे। किन्तु उन के पीछे वे बिल्कुल स्वतन्त्र हो गए। लोगों को तङ्ग करते और ज़रा सी बात के लिए मरने-मारने को तैयार हो जाते थे। दूसरों की 'बीड़' में अपने बैल चरा लाते और उलाहना देने पर लाल-पीली आँखें दिखलाने लगते थे। भावज बड़ी ही बुद्धिमती, कौशलमयी, गृहकार्य-पटु, साक्षात्–लक्ष्मी ही थी। मोहन महाराज की उच्छृङ्खलता देख मन-ही-मन कुढ़ती रहती थीं। लोगों के प्रति उनका अशिष्ट-व्यवहार उन्हें असह्य हुआ।

एकान्त में बुला कर बहुत समझाया, आगा-पीछा सुझाया, हिताहित का ज्ञान कराया, किन्तु वे अपने संकल्प से तिल भर भी न डिगे। समझाने के बदले उल्टे चिढ़ गए। मोहन महाराज की स्त्री ने इसका दूसरा ही अर्थ लगाया। उसने समझा जिठानी बाई हम पर शासन करना चाहती है, धाक जमाने की चेष्टा कर रही है। देवर क्या दुधमुँहे बालक हैं; कुछ जानते ही नहीं ? उस दिन से दोनों देवी जी से विरक्त रहने लगे। कभी-कभी टीका-टिप्पणी का भी अवसर आ जाता था। किन्तु मर्य्यादा नहीं टूटने पाती थी, यही ग़नीमत थी। देवी जी में जैसे सब गुण अच्छे थे वैसे ही स्वार्थान्धता का एक महा-दुर्गुण भी था। कृषक-जनिता पर पति का पूरा दबदबा देख यह अपने एक अत्यन्त गूढ़, पर नितान्त जघन्य, स्वार्थ के साधन-कार्य में प्रवृत्त हुई।



पण्डित बैजनाथ जी दो महीने की छुट्टी में घर आये। आते ही देवी जी ने अपना सुदर्शन-चक्र चलाया। लोगों को पहले ही से साध रक्खा था। उन्होंने आ-आ कर खूब कान भरे। मोहन महाराज की शिकायत की—अशांति फैल जाने का भय दिखाया। मालगुज़ार साहब जो सदा क़ानूनगो के सुदृढ़ कानून के पाश में बँधे रहते थे, देवी जी का रुख़ देख

उसी ओर ढुलक पड़े। बोले—"पण्डित जी! आप हमारे मालिक और मा-बाप हैं। आपके देव-तुल्य पिता का व्यवहार बर्ताव देखा, आपके राम-राज्य का सुख लूटा; पर धर्मावतार अपराध क्षमा करें, ऐसे पवित्र और उज्ज्वल कुल में मोहन महाराज जैसा उद्दण्ड, पर-पीड़क और उत्पाती मनुष्य हमें पहिले-ही-पहल देखने को मिला है।" बद्री चौबे और छन्नू दुबे ने भी इसकी पुष्टि की और कहा—"दीनबन्धु! कुछ ऐसा उपाय किया जाय जिसमें हम ग़रीब इस अत्याचार से बचें।" देवी जी भी आकर किवाड़ की आट में बैठ गईं। सब की बात-चीत सुन कर उन्होंने धीरे से कहा—"देखो, अभी आप आए हुए हैं; गाँव के छोटे-बड़े सब आपका आदर-स्वागत कर रहे हैं, पर लाला को आपके बड़प्पन का कुछ भी ख़्याल नहीं है। वे अब भी उन्हीं गँवारों में बैठे गाँजे का दम लगा रहे हैं। वही पहनावा, वही रहन-सहन, और वही बात-चीत! भला आप के सामने तो इन कुचालों को ताक़ में रखते; पर वे तो इस स्वतन्त्र-राज्य के एक-मात्र शासक और अधिकारी हैं; उन्हें क्या परवा? विश्वास न हो तो चल कर देख लीजिये।"

वास्तव में उस समय भी एक अलग कमरे में मोहन महाराज का 'ढेरा' विचित्र भरभराहट के साथ ज़ोर से चक्कर खा रहा था।

५

स्वार्थ-साधन मनुष्य का स्वभाव-सिद्ध गुण है। उसे वह जितना प्रिय प्रतीत होता है, उतना अन्य कार्य नहीं। अभी कोई हम से झूठ-मूठ ही आकर कह दे कि तुम्हारे १०) बढ़े अथवा तुम्हारी पदोन्नति हुई तो हम उस पर शीघ्र ही विश्वास करने को तैयार हो जायँगे। कारण—मनोधर्म का झुकाव उसी ओर रहता है। अन्यान्य साधनाओं की नाईं उसमें आत्म-बल-प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती। इसके प्रतिकूल यदि कोई अनर्थ-मूलक या अशुभ-सम्वाद सुनाये तो मन उस पर सहसा विश्वास करने की आज्ञा नहीं देगा। फलतः प्रश्नों की भरमार होने लगेगी, और वह शरीर का अधिकारी (मन) कोई स्थूल-प्रमाण पाने के लिये व्यग्र हो उठेगा।

प्रकृति के इसी नियम के अनुसार पं० बैजनाथ जी ने उन लोगों का स्वार्थ-मूलक प्रस्ताव बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया। पत्नी ने जब देखा कि मन्त्र काम कर गया तब कुछ आगे बढ़ कर स्पष्ट शब्दों में कहने लगी—"ज़मीन अच्छी है, मालिक-मक़बूज़ा है, बस्ती के लोग लड़-भिड़ कर निकाल लेंगे तो समझ लीजिए, हमारी पैतृक-सम्पत्ति पर पानी फिर गया। नौकरी का क्या भरोसा; आज है कल नहीं। फिर हम लोगों को आगे भी तो कोई है; सन्तान के लिये क्या बच रहेगा ?

देवर जी बिल्कुल निरक्षर हैं, उन्हें किसी बात का अनुभव नहीं। तिस पर नित्य नई उपाधि खड़ी करते रहते हैं । आप ही बतलाइये ऐसी दशा में इसका (ज़मीन का) निकाल लेना क्यों पाप समझा जायगा ?"

पण्डित जी ने सहानुभूति-पूर्ण स्वर से उत्तर दिया—"किन्तु उसके लिए भी तो कुछ होना चाहिए यह बेचारा क्या करेगा ?"

देवीजी—"करेंगे क्या ? ठोकर खायँगे तब आप ही नेत्र खुल जाँयगे। फिर ज़मीन हमारे ही हाथ में तो रहेगी, जब देखेंगे कि रास्ते पर आ गये, खुशी से लौटा देंगे।"

पण्डित जी—"पर बल-प्रयोग के बिना वह सहज में छोड़ने का नहीं।"

देवी—"इसका सहज उपाय है । आप पटवारी को बुलवा लीजिये। हम सब कर लेंगे । आपको अपनी मान-मर्य्यादा के विरुद्ध एक शब्द भी न कहना पड़ेगा।"

पण्डितजी—"पर ऐसा करने से लोग क्या कहेंगे, लोक-निन्दा से बचने का क्या उपाय है ?"

देवी—"आप इसकी चिन्ता न करें। छोटे-बड़े सब मेरी मुट्ठी में हैं। इसके सिवा उन्होंने सबका नाकों-दम तो कर रखा है। सब एक-मन से उनके वहिष्कार की कामना कर रहे हैं।"

पण्डित जी—"पर मैं उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहता।"

देवी—"कष्ट न दीजिये, कौशल से राह पर तो लाइये। यों तो वे लठ बाँधकर लड़ने के लिए तैयार हो जाँयगे।"

पण्डित जी—"अच्छा तो यही सही; पर काम खूब सावधानी से करना होगा, जिसमें बात न फैलने पाये। नौकरी का मामला ठहरा।"

देवी—"यही होगा।"

इतने में घर की बूढ़ी नौकरानी किसी काम के बहाने से वहाँ आ पहुँची। उसने देवी की प्रशंसा और मोहन महाराज के दुर्व्यवहार की लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधते हुए कहा—"भैया, का करें, कहाँ लौं देखें। कछू कही न जात। लल्लू ने गजब कर डारो। हम लोगन खाँ खाई रोटी नाँहिं पचत। गाँव भर से झगड़ा मोले लेत फिरत हैं। जो मन में आउत है सोई करत हैं। कोऊ की एक नाइं मानत।"

पण्डित जी ने मुस्कराकर कहा—"दादी तुम क्यों नहीं समझातीं? बूढ़े स्याने घर में काहे को होते हैं?"

दादी जी फूलकर कुप्पा हो गईं। बिन माँगा वरदान मिल गया। बौखलाती हुई बोलीं—"अच्छी कही भैया, हाथ-पाँव टुरवाने हू हैं। फगुआ की महतारी ने एक-दिन तनक रोक दओ, फिर का हतो-परलो पर गओ। दौर के घुटकी पकर लई

हम लोगन ने हाथ-पाँव जोर के छुड़वाओ।"

पण्डित जी सुनकर चुप हो गये। बूढ़ी दादी खसक गईं। देवी जी भी अन्तर्द्धान हुईं। द्वार पर खड़ा मोहन महाराज का पंचवर्षीय बालक दीन-मुख बनाये कातर-दृष्टि से पण्डित जी की ओर ताक रहा था, किन्तु उस पर किसी ने ध्यान न दिया।

६

छुट्टी पूरी होने पर पण्डितजी बरेली चले गये। मोहन महाराज को रहने के लिए अलग मकान दे दिया गया। 'स्त्रियों की रात-दिन की कलह अच्छी नहीं होती' यह कारण बताकर मनस्तुष्टि कर दी गई। वे बड़े-भाई को पिता के समान मानते और आदर करते थे। उनकी बात को टाल न सके। समझे, भाई-साहब ठीक ही कर गये हैं। निश्चिन्त होकर बैठ गये। चतुर भावज ने इस बात को इतना छिपाया कि हज़ार उपाय करके भी मोहन महाराज उनके हृदय की थाह न पा सके। चुपचाप अपना काम करते गये। ढोर चराया करते थे, ढोर ही चराते रह गये! पढ़े लिखे कुछ थे नहीं, जानेंगे क्या ख़ाक? पुराने ढर्रे के भोले-भाले मनुष्य थे; इन जटिल-प्रश्नों का हल करना उनके समान थोथी बुद्धि वाले मनुष्य का काम नहीं था। देवीजी ने नौकर-चाकर और

चरवाहे बढ़ाकर उनका काम हलका कर दिया, बेकाम बैठे-बैठे उकता गये। ज्यों-त्यों कर तीजा और महालक्ष्मी की कथा सीखी। पोथी में से नहीं मुखाग्र। आस-पास के छोटे-छोटे खेड़ों में सुना आया करते थे। धीरे-धीरे श्री सत्यनारायण की कथा भी पढ़ने लगे। गाँव के भोजन-भट्टों में वे अग्रगण्य थे। घर १॥ सेर और बाहर पूरे ३॥ सेर का भोग लगाते थे। कई लोगों को खाने की शर्त में आपने हरा दिया था! वर्ष में योंही ४-६ बाज़ियाँ मार लेते थे। नाग-पञ्चमी के दिन आप कुश्ती लड़ते और इनाम पाते थे। सबके आगे आपही झण्डा लेकर निकलते थे। आपके शरीर की अनावश्यक स्थूलता को देख स्त्रियाँ हँसने लगती थी। लड़के तालियाँ पीटते थे। पर डरते थे, पास नहीं जाते थे। दो एक परोपकार्य्य-व्रतधारी सज्जनों ने कई-बार आपको सचेत कर देने का विचार किया किन्तु भय के भूत ने रोक दिया। कौन बैठे बिठाये झगड़ा मोल ले?

निदान दो-तीन वर्ष में मोहन महाराज अपनी पैतृक-सम्पत्ति से पूर्णतया वहिष्कृत हो गये। ज़मीन ही सब-कुछ थी, वही निकल गई। दो-तीन गायें, दो बैल और एक भैंस उन्हें देदी गई।

बात यहाँ तक बढ़ जायगी, यह बैजनाथजी न जानते थे। अन्यथा, वे कभी ऐसे घोर-दुर्नीति-मूलक कार्य में हाथ न

डालते। किन्तु घर की मालकिन थीं देवीजी, पण्डित जी बाहर रहते थे, वे जो चाहती थीं, करती थीं। रोकने से सारा खेल चौपट हुआ जाता था। फिर भी उन्होंने कई-बार मोहन महाराज के हाथ में कारोबार सौंप देने का विचार किया। किन्तु उनकी अयोग्यता देखकर साहस न हुआ। अब मोहन महाराज के नेत्र खुले। उन्होंने चारों ओर सर्वनाश-ही-सर्वनाश देखा। इधर-उधर बहुत दौड़-धूप की किन्तु उनके प्रति किसी ने भी सहानुभूति न दिखलाई। जिनमें सहानुभूति-बुद्धि थी, वे भी चुप रह गये। लाचार मोहन महाराज उन्हीं थोड़े-से मवेशियों पर अपनी जीविका चलाने लगे। रूखी खाकर दिन काटते थे और भाग्य को कोसते थे।

चिन्ता के मारे वैसे ही सूखकर काँटा हो गये थे, इधर लड़की का द्विरागमन आ गया। ४०-५० रुपयों ही में काम निकल जाता, किन्तु, वे आवें कहाँ से? दो-एक जगह रुपया मिलने की आशा से गये किन्तु, काम सिद्ध न हुआ। देवीजी के डर से कोई रुपया न देता था। मन में सोचने लगे, अब भावज ही के पास चलना चाहिये। क्या मेरी इस दशा को देखकर भी उन्हें दया न आयगी? पर जायँ कौनसा मुँह लेके? इतने दिनों तक कभी बात पूछने तक को न गये, अब रुपये के लिये कैसे मुँह खोला जायगा? दो दिन तक मोहन महाराज अन्न-जल त्यागे इसी चिन्ता में चारपाई पर पड़े

रहे। अन्त में स्त्री से न रहा गया। उसने कहा—"आपके बदले मैं जाऊँगी। जो अपमान होना होगा मेरा हो जायगा।"

इतना कह वह चुपचाप चली गई। देवी जी के द्वार पर खड़े होकर उसने लम्बी साँस छोड़ी और धड़कते हुए हृदय से किवाड़ खटखटाये। वे ही दादी जी आकर भीतर लिवा ले गईं। देवी जी पर दृष्टि पड़ते-ही चीख़ निकल पड़ी। बड़ी कठिनाई से आँसू पोंछ कर अपनी रामकहानी सुनाई। सहायता के लिये प्रार्थना की—"कन्या तुम्हारी है। कुल की लाज तुम्हारे हाथमें है, चाहे रक्खो चाहे डुबाओ"। देवी जी मृदु-मन्द मुस्कराहट के साथ बोलीं—"बहिन, रुपया मेरे पास होता तो इसी समय दे देती। वह और होता ही किस लिए है? दूसरों के काम आ जाय तो इससे बढ़ कर लाभ ही क्या? पर, इस समय हाथ ख़ाली होगया है। दो-जोड़ी बैल कल ही नये ख़रीदने पड़े। नौकरों को साल भर की चाकरी भी देनी पड़ी। बस सब चुक गया। पर हाँ, तुम्हारे लिए कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। कहीं से ठीक करवा दूंगी। कुछ बन्धक रखना पड़ेगा।"

बंधक की बात सुनकर मोहन की स्त्री बहुत ही व्यथित हुई। किन्तु उपाय नहीं था। दो गायें लगती थीं; लाकर बाँध दी। कहा—"आप अपनी तरफ़ से बन्धक रख दीजिए। जब रुपया आ जायगा इन्हें लौटा लूँगी।"



धीरे-धीरे मोहन महाराज सुधरने लगे । उन्होंने पुरानी आदतें छोड़ दीं । अब वे लोगों से खूब हिल-मिल कर रहते हैं। सब के काम आते हैं । यथा-शक्य दूसरों की सहायता करते हैं लोग उनके आचरण से बहुत प्रसन्न हैं । उन्हें दूसरे गाँव में जोतने को ज़मीन दिला दी गई । पूंजी भी मिल गई । धीरे-धीरे उनकी दशा सुधरने लगी और वे गाँव के एक अच्छे किसान कहलाने लगे ।

मोहन महाराज के अपहृत-द्रव्य का सुख देवीजी बहुत दिनों तक न भोग सकीं । दो-तीन वर्ष लगातार खेती में टोटा पड़ा । रुपया-पैसा खसक चला । वे अब उस 'धरोहर' को लौटा देने का विचार करने लगीं । उन्हें वह बोझ सा जान पड़ने लगी । वह रह-रह कर उनके हृदय को वेधने और शांति में बाधा देने लगी । उन्होंने इस भीषण-विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए परमात्मा से प्रार्थना की । किसी अज्ञात देव-दूत ने मानों धीरे से उनके कान में कह दिया—"यह दूसरे की थाती और कब तक छाती पर रक्खे रहोगी ? धन चञ्चल होता है, सदा किसी के पास नहीं रहता । शायद तुम्हारे पास भी न रहा तो फिर 'परिशोध' के लिए अवसर न मिलेगा । अन्याय-पूर्वक ली हुई वस्तु कभी किसी के पास नहीं रहती ।"

सहसा किसी अज्ञात-आशङ्का से उनका हृदय विचलित हो उठा। नित्य एकान्त में बैठ घण्टों रोया करती थीं। किसी से कुछ कहती-सुनती न थीं, वे अकेली ही अपनी करनी का फल भोगना चाहती थीं। इसी से उन्होंने उनसे कभी इस विषय की चर्चा तक नहीं की। काँच की भट्टी की नाईं भीतर-ही-भीतर जलती रहीं।

बस्ती के लोग भी अब उनसे मन-ही-मन घृणा करने लगे। दिल्लगी में किसी नौकर ने दूसरे से कहा—"प्यारे! तुम ने तो मालिक का खूब माल उड़ाया!" उसने तुरन्त उत्तर दिया—"हम ऐसे धन पर थूक देते हैं। मेहनत करके जो मज़दूरी पाते हैं, वही बहुत है। भगवान् इतना ही देते जायँ।" देवीजी को इसकी ख़बर लग गई। जी में आया चल कर अभी झगड़ा तय कर डालूँ। पर, पाँव आगे न बढ़े। लज्जा ने मुँह बन्द कर दिया।

× × × ×

इसके दो वर्ष बाद देवीजी के बड़े लड़के का विवाह हुआ। बैजनाथ जी ने लिख दिया—"छुट्टी नहीं मिलती। तुम प्रबन्ध करो। दो दिन के लिए आ जाऊँगा।"

निदान पहले की बातों को भुला, देवीजी विवाह की तय्यारी करने लगीं। जिस दिन बारात का प्रस्थान था उसके एक दिन पहले एक विचित्र-घटना घट गई। चढ़ाव के लिए जो गहना

तय्यार करवाया था, उसका सन्दूक अचानक ग़ायब हो गया। देवी जी ने रत्ती-रत्ती मकान छान डाला। नौकरों को पुलिस में देने की धमकी दी। पर कुछ फल न हुआ। बेचारी बड़े सङ्कट में पड़ीं। कोई उपाय न देख मोहन महाराज को बुलवाया। वे तुरन्त आ पहुंचे। उन्हें सामने देख देवीजी की आँखें नीची हो गईं। गिड़गिड़ाकर बोलीं—"लाला, मेरी लाज रक्खो। नहीं तो, किसी को मुँह दिखाने योग्य न रहूंगी। एक दिन मेरी छोटी बहिन ने मुझ से यही प्रश्न किया था। आज मैं ठीक वैसा ही प्रश्न तुम से कर रही हूँ। मैं स्त्री हूं। तुम पुरुष हो। मेरे अपराधों को क्षमा कर संसार में रहने के लिये स्थान दो। जैसे बने गहने का प्रबन्ध करो।'

देवी जी को सामने हाथ-बाँधे खड़ा देख मोहन का हृदय पिघल उठा। आँखों के आँसुओं ने दीर्घकाल की द्वेष-कालिमा धो दी। बोले—"देवी! तुम माता के समान हो। तुम्हारी आज्ञा मेरे सिर पर है। माता ने छुटपन ही में मुझे तुम्हारी गोद में डाल दिया था। तब से मैं उसी में पलता रहा। पीछे दुर्भाग्य ने छीन कर अलग कर दिया। अब फिर भगवान की कृपा हुई है। तुम चिन्ता न करो, मैं अभी प्रबन्ध करता हूँ।"

इतना कह मोहन महाराज चले गये और स्त्री तथा

लड़की का कुल ज़ेवर उतार कर ले आये । उसे भावज के हाथ में दे मोहन ने उनके चरणों पर सिर रख दिया। देवी जी अब हृदय के आवेश को न रोक सकीं; ज़ोर से रो उठीं। बड़ी कठिनाई से मोहन महाराज ने समझा-बुझा कर शान्त किया। पं० बैजनाथ जी इस समाचार को सुन पुलकित हो उठे। उन्होंने भाई को गले लगाकर कहा—"हम पढ़े-लिखे मनुष्यों से तुम अपढ़ हज़ार दर्जे अच्छे हो।"

❀ ❀ ❀

पांचवाँ आँसू

दो

 सा 

धू

१

सुजानपुरा नामक एक छोटे-से ग्राम में रामशरणदास वैष्णव रामकुमार के मन्दिर के महन्त थे। आप श्री हनुमानजी के अनन्य-भक्त थे। आजन्म ब्रह्मचारी थे। आपके पवित्र अन्तःकरण पर पाप की छाया तक नहीं पड़ने पाई थी। पर आपकी प्रकृति बहुत उग्र थी। इससे लोग आपके पास बहुत कम आया-जाया करते थे। उन्हें सदा महन्तजी के रुष्ट होने का डर लगा रहता था। यही कारण था कि वे आपके अमूल्य-गुणों का बहुत-थोड़ा लाभ उठा सके थे। जब आपके स्वर्ग-गमन का समय आया तब आपने अन्यान्य सुयोग्य चेलों के रहते हुए हठ-पूर्वक भजनदासजी को अपनी कण्ठी दे दी। उस समय तो कोई कुछ न कह सका। पर उनके लोकान्तरित होते ही उनके अन्यान्य चेलों ने इस विषय को ले बड़ा आन्दोलन मचाया। भजनदास क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न हुए थे। चेलों ने कहा हम ब्राह्मण ही इस पद के अधिकारी हैं। गाँव के पञ्च बुलाये गये। उनके निकट

यह विषय निर्णयार्थ रखा गया। सबकी सम्मति लेकर हरजू पटैल ने फ़ैसला सुना दिया। जिसका आशय इस प्रकार था—"जिसको महन्त जी कण्ठी दे गये हैं, वे-ही उसके अधिकारी हैं। इसके अतिरिक्त उनमें भूत-पूर्व महन्तजी के सभी गुण विद्यमान हैं। अस्तु, ऐसी दशा में अन्यान्य सुयोग्य व्यक्तियों के रहते हुए भी हम उन्हीं को महन्त मानते हैं। हाँ, नये महन्त में यदि किसी बात की अयोग्यता दिखती तो हम दूसरा विचार कर सकते थे।" बूढ़े पटैल बाबा चुपचाप सभा से उठ आये। अन्यान्य सज्जनों ने भी चुप-चाप वहाँ से प्रस्थान किया। भजनदासजी को बड़ी धूम-धाम से महन्ती देदी गई। इस कार्य से बस्ती के सब लोग सन्तुष्ट दिखलाई देते थे।

२

श्रीयुत पूर्व-महन्त रामशरणदास जी पढ़े-लिखे नहीं थे। लोगों को उनकी यह कमी बहुत खटकती थी। किन्तु भजनदास जी के गद्दी पर बैठते ही मानों इस अभाव की पूर्त्ति होगई। सभी उनके सद्गुणों की प्रशंसा करने लगे। आप बड़े परिश्रमी, संयमी, सदाचारी, ईश्वर-परायण और स्पष्ट-वादी थे। आपके वचनों में वशीकरण की अद्भुत-शक्ति थी। आप ज्योतिष अच्छा जानते थे। 'ज्योतिष' और 'भक्ति'

ने मिलकर आप में भविष्य-वाद की ऐसी विलक्षण-शक्ति उत्पन्न की थी जिसका आजकल प्रायः सर्वत्र अभाव रहता है। योग की कई क्रियाओं का अभ्यास आप बहुत पहले से करते चले आरहे थे, अब उनके उत्कर्ष का समय आगया। आप प्रातःकाल स्नान कर नित्य दो घण्टे प्राणायाम करते थे और दूसरों को भी सिखलाते थे। हर गुरुवार को मन्दिर में बस्ती के लोगों को एकत्रित करते और प्रसाद बाँट ३-४ घण्टे तक सदाचार, परोपकार और सत्य-व्यवहार पर व्याख्यान देते थे। लोग आपके शिक्षा-वाक्य बड़े प्रेम से सुनते थे, और उनमें श्रद्धा रखते थे। धीरे-धीरे आपकी लोक-प्रियता बढ़ गई। लोग नित्य १०-११ बजे रात तक आप से शास्त्र सुनते, शंकाओं का समाधान कराते और विवाद-ग्रस्त विषयों पर वादानुवाद करते थे। आप सुख-दुःख में समान-भाव से लोगों की सुध लेते तथा परोपकार के लिए कठिन-से-कठिन शारीरिक कष्ट सह लेते थे।

सब मिलकर ५-६ छोटे-बड़े गाँव मन्दिर में लगे हुए थे। उन सबका प्रबन्ध आपही अकेले किया करते थे। आपका कहना था कि दूसरों के हाथ गाँव का काम सौंपना ग़रीब आसामियों पर अत्याचार करना है। ऐसा करने से रामकुमार का ख़ज़ाना ख़ाली हो जायगा। आप हर-एक गाँव में ख़ुद जाते, हिस्सा वसूल करते और सरकारी क़िस्त पटाते थे।

झगड़े-बखेड़े भी आपही निबटाते थे। ख़बर देने के लिए आपका नियत किया हुआ एक मनुष्य दूत के रूप में प्रत्येक गाँव में रहता था। यह व्यक्ति आपके चेलों में से होता था। चेलों का चुनाव भी आपने बड़ी योग्यता से किया था। घूम-घूमकर बड़ी कठिनाई से कई वर्षों में आपने पाँच सदाचारी, सुशील और सद्गुणी नवयुवकों को चेला बनाया था। पेटार्थू बाबा और चेले सब रफ़ू-चक्कर हो गये थे। लोग कहते थे—"महाराज पड़े रहने दो राम-सरकार का खायेंगे और उन्हीं का गुण गायेंगे।" आप उत्तर देते—"खाना जितना सुगम है उसका पचाना उतना ही कठिन है। संसार में अकर्मण्य, आलसी और कुकर्म्मियों की संख्या बढ़ाने के लिए ईश्वर ने मुझे यह काम नहीं सौंपा है। यदि मैंने अपने समय में ऐसे मनुष्यों को आश्रय दिया तो समझिये आगे उन के द्वारा किये गये सारे कुकर्म्मों का भार अपने ऊपर ले लिया।" यह सुनकर लोग चुप हो जाते थे।

मन्दिर से लगा हुआ ठीक उसके पीछे एक छोटा-सा पुष्पोद्यान था। आपने उसे खूब बढ़ा दिया। छोटे-छोटे फूलों और बिही, नारंगी इत्यादि स्वादिष्ट फलों के वृक्ष दूर-दूर से लाकर आपने अपने हाथ से लगाये थे। उन्हें अपने ही हाथ से सींचते थे, अपने ही हाथ से कूड़ा-कचरा साफ़ करते थे। जब उद्यान भली-भाँति सुसज्जित एवं सम्वर्द्धित हो गया, तब

आपने उसके बीच में एक शिवालय बनवा उसी के पास एक छोटा-सा कुआँ खुदवा दिया। वसन्त में आपका वह उद्यान साक्षात् इन्द्र का नन्दन-वन ही बन जाता था। जिधर देखिये उधर-ही प्रकृति की इस अनोखी शोभा का अद्भुत-दृश्य चित्त को आकर्षित करता था। मन में स्वर्गीय-सद्भाव उदित हो आते थे और क्षण-भर के लिये मनुष्य पार्थिव-यन्त्रणाओं को भुला स्वर्ग के किसी अपूर्व-सौख्यमय दिव्यधाम में विचरण करने लगता था। आप वहीं बैठकर एकान्त में ईश्वर का भजन करते और तीन बजे से उठ कर लट्ठ लिये उस वन्य-पशुओं के अत्याचार से बचाने के लिये अपने प्यारे गोल चबूतरे पर जा बैठते थे। पूछने पर कह देते थे—"मैं ठाकुर जी के भण्डार का रक्षक हूँ, भक्षक नहीं।"

आपको सार्वजनिक-कार्यों में स्वत्व लेते देख स्थानीय हैड-मास्टर ने उन्हें अपने स्कूल का सरपंच बना लिया। आपने बिना किसी आपत्ति के इस पद को स्वीकार कर लिया। उस दिन से जब जब कमेटी होती, आप बराबर स्कूल में जाते और लड़कों को बताशे बँटवाते थे। जिनके पास पुस्तकें न होतीं उन्हें पुस्तकें ख़रीद देते, स्लेटें मोल लेकर ग़रीब लड़कों को बाँटते और सदाचार पर प्रति वर्ष एक अच्छा पुरस्कार देते थे। लड़कों के कारण आपको स्कूल जाना कठिन हो जाता था। रास्ते से ही वे उन्हें 'सीताराम बाबा

जी, सीताराम बाबा जी' कहकर पीछे लगते और स्कूल में जाकर ही दम लेते थे। परिणाम यह होता था कि उनके स्कूल पहुँचते-न-पहुँचते हाज़िरी दूनी हो जाती थी।

गाँव में जब कभी किसी प्रकार की दुर्घटना घटती और हाकिम-सूबे तहक़ीक़ात को आते, तब सब से पहिले महन्तजी से मिल कर उसका सच्चा-हाल जान लेते थे और उन्हीं की सम्मति के अनुसार काम करते थे।

३

गाँव के मुखिया वे ही हरजू पटैल थे। आप जाति के कुरमी थे, स्वभाव में महन्तजी से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। विचारों का ऐसा बढ़िया सामंजस्य शायद ही कहीं देखने में आया हो।

व्याख्यान के समय आप महन्त जी के पास खड़े होते और संस्कृत-मिश्रित विशुद्ध-हिन्दी के सुललित शब्दों का अनुवाद कर अपढ़ किसानों को समझाते थे। इधर महन्तजी लोगों को शास्त्र-पुराण पढ़कर सुनाते थे। उधर पटैल जी मूर्ख किसानों में बैठकर अपनी गँवारी भाषा में उन्हीं बातों की चर्चा किया करते थे। उनके साथ आपका ख़ासा वादानुवाद होता था। जो तर्क आप अपनी उक्तियों द्वारा काट न सकते उसे दूसरे दिन समाधानार्थ महन्तजी के सामने

रखते थे। महन्तजी बहुधा उनके इस भोलेपन पर हँसा करते थे।

महन्तजी प्रजा के कल्याणार्थ जिन नये-नये आयोजनों का आविष्कार करते थे, पटैलजी उन्हें मानो गुरु-मन्त्र की नाईं गाँठ में बाँध लेते थे। वे पुराने ढर्रे के सीधे-सादे मनुष्य थे। इधर नये-युग के मनचले नवयुवकों की भरती बढ़ रही थी। अतएव जब कभी किसी झगड़े-बखेड़े के सुलझाने में वे अक्षम हो जाते, तब खिसियाकर सुरती का बटुआ उठा घर में जा विराजते थे। महन्तजी को जब इसकी ख़बर लगती, तब वे पटैल बाबा पर तुरन्त समन निकाल देते थे। उनके पहुँचते ही महन्तजी बड़े ही तीव्र और कटु-शब्दों में उनकी अभ्यर्थना करते थे। वे बहुधा कहा करते थे—"अरे हरजुआ! तुझसे अच्छी बुद्धि तो दुलारे में है, उसी से क्यों नहीं निबटारा करा लेता।"

दुलारे उनके छोटे लड़के का नाम था। सुनकर पटैल गर्दन झुका चुप हो रहते और धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ करते—"महाराज, का करौं इन लुच्चन के आगे मोरी कछू चलत नइयाँ। वे कहत हैं बुड्ढा सठियाय गओ, वैसइ बड़बड़ान लागत हैं। मदरसों में चार अच्छर पढ़ लये बस बिदुर के बाबा बन गये। का कहें महाराज, हम लोगन खाँ समझावे की सान राखत हैं अब ई जमाने खाँ देखत,दीनबन्द,नीक लगत

है कि भगुवान जल्दी मौत दो; जे लच्छन देखे नईं जात।"

सुन कर महन्त जी का क्रोध शान्त हो जाता था। वे वादी-प्रतिवादी को अपने समक्ष बुला दोनों की फ़रियाद सुनते और अपराधी को उचित-दण्ड दिवाने की व्यवस्था करते थे।

गाँव के दीन-हीन अपाहिजों के लिए महन्त जी ने एक सहायक-फ़ण्ड खोलना चाहा। इसके लिए पटैल बाबा से सहायता माँगी गई, उन्हें मुखिया बनने के लिये भी कहा गया। आपने चट स्वीकार कर लिया और अपने एक गाँव की कुल आय स्थायी-रूप से फंड में लगा दी। इस पर आप के लड़कों ने बड़ा आन्दोलन मचाया। आप रूठ कर मन्दिर में जा बैठे और तीन दिन तक ठाकुर जी का बालभोग पाते रहे। तब बड़े लड़के ने आकर हाथ पाँव जोड़े, विनय-अनुनय की और घर चलने को कहा। उत्तर में आपने गुसाईं जी का निम्न लिखित पद सुना दिया—

"जिनके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए तिन्हें कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।"

इतना कह कर आप चुप होगये। अन्त में गाँव वालों ने समझा-बुझा कर बड़ी कठिनाई से आप को घर भेजा।



एक वर्ष अच्छी उपज हुई। घर-बाहर के सब बण्डे लबालब भर गये। बहुत-सा अन्न ग़रीबों को बाँटा गया दूसरे किसानों

को उधार दिया गया। मन्दिर के गाँवों और बगडों में रखवाया गया। ब्राह्मण, भाट और नाई-धीमरों को दिया गया तो भी पूरा न पड़ा। अन्न के कई बड़े-बड़े ढेर पड़े सड़ने लगे। पटैल बाबा ने यह हाल भीतर स्त्री को सुनाया। बूढ़ी पटैलिन ने मुस्करा कर कहा—"तो तुलसी का व्याह काहे नहीं कर डालते। कई बेर मनसूबा करो पर पूरा न परो। ई साल रामलला ने इच्छा पूरन कर दई। अब देर करबे को काम नइयाँ, कौन जाने कबे प्रान निकर जाँय और मन-की-मन में रह जाय।"

स्त्री की चेतावनी सुन कर पटैल बाबा सचेत हो गये, उन्हें सामने रामलला की हँसती हुई मोहिनी-मूर्त्ति दिख गई। बस, आप महन्त जी के पास पहुंचे और स्त्री का सन्देश कह सुनाया। सुनकर उन्होंने नाक सिकोड़ ली। कारण, स्त्री का नाम आप सुनना नहीं चाहते थे। स्त्री-जाति को आप मन्दिर के पास नहीं झाँकने देते थे। कभी कोई दीन-दुःखिनी स्त्री यदि अपना दुःख सुनाने भूल से वहाँ पहुँच जाती तो आप गर्जकर मन्दिर हिला देते थे—यही एक दुर्गुण आप में था। इसे पाठक चाहे जिस दृष्टि से देखें, उन्हें अधिकार है, हम कुछ नहीं कह सकते—बात जैसी थी वैसी लिख दी गई।

पटैल बाबा उनके मन की ताड़ गये, सम्हल कर बोले—"ना महाराज मैंई केई बेर अपने मो से जबान निकार चुको

हौं; परतिग्याँ कर चुको हौं। दीनानाथ मेरी इच्छा पूरन करो।" सुन कर महन्त जी प्रसन्न हुए। बोले—"भक्त, तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। चलो उठो, और तैयारी करो।"

इसके बाद बड़ी धूम-धाम से बारात तैयार हुई। महन्त जी सण्ड-मुसण्ड बाबाओं को पास नहीं फटकने देते थे। किंतु इस समय उनकी वह प्रतिज्ञा टूट गई। दूर-दूर से लम्बे-चौड़े मस्तराम दलबद्ध हो रङ्ग-बिरङ्गी पगड़ियाँ बाँधे हाथियों पर डोलते हुए आ गए। चिमटों की झनझनाहट से मन्दिर गूँज उठा। महन्त जी सकपका गये। सब को बड़े आदर से लिया और शिवजी के विवाह जैसी विचित्र बारात को साज पटैल के यहां पहुँचे। बड़ी धूमधाम से रामकुमार का विवाह हुआ। बाहर बाबाओं की अद्भुत छटा दर्शनीय थी। सब-के-सब भङ्ग-के-रङ्ग में रंगे वाद्य-यन्त्रों के साथ-साथ रामायण की चौपाइयों और सूरसागर के पदों की वर्षा कर देते थे। मारे कोलाहल के किसी को कुछ सुनाई ही नहीं देता था। विवाह की रस्में पूरी हो जाने पर बूढ़ी पटैलिन ने महन्तजी को भीतर बुलवाया। आप बहुत हिचकिचाये। इतस्ततः करते देख एक विशालकाय बलिष्ठ स्त्री आकर हाथ पकड़ आपको ज़बरदस्ती भीतर घसीट ले गई। वहां आपकी रामनामी छीन ली गई। एक स्त्री ने साड़ी और दूसरी ने लहँगा पहना दिया। हाथों में चूड़ियाँ पहिना कर माथे पर लम्बी-चौड़ी बिंदी लगा दी। अन-

न्तर आप से नाचने को कहा गया। आप खीझ कर बोले—"बाबा, सब कुछ तो हो गया, अब हाथ जोड़ता हूँ नाचना मुझे नहीं आता।" पर इधर उनकी सुनता कौन था; उन्हें लाचार हो नाचना ही पड़ा। उसके बाद पटैलिन की ओर से कहा गया—"आप स्त्रियों का तिरस्कार करते थे, उनकी छाया तक नहीं छूते थे—यह उसी का पुरस्कार है।" आपने सिर झुका लिया और बाहर चले आये। बाबाओं को जब यह हाल मालूम हुआ, तब बड़े बिगड़े। पुजारी बजरङ्गदास तो सोंटा लेकर खड़े हो गये। इधर इशारा पाते ही स्त्रियों के एक बहुत बड़े दल ने आकर उनकी भी खूब ख़बर ली। बेचारों पर बड़ी मार पड़ी। लँगोटी सम्हालते हुए भागे।

निदान, बड़े समारोह से यह आनन्दोत्सव समाप्त हुआ। पटैल ने जी खोल कर दान किया। बण्डे खुलवा दिए और तीन दिन तक अन्न की खूब लूट रही। दहेज में एक पूरा गाँव रामकुमार जी को मिला। महन्त जी दल-बल सहित प्रसन्न होते हुए मन्दिर में जा विराजे।

५

यद्यपि पटैल को गाँव से अच्छी आय थी तथापि मित-व्ययिता के नियमों का पालन न करने के कारण ख़ाली हाथ रहते थे। कुटुम्ब आपका बड़ा था। सब मिलकर २०–२५ प्राणी

थे। इनके अतिरिक्त २०—२५ समाजीय ८—१० ब्राह्मण भाट, नाई और ४—६ नौकर-चाकर आपके यहाँ नित्य भोजन पाते थे। पटैलिन माई की आज्ञा से पुरोहितजी पूजा-पत्री फैलाये पौर में अड़े घण्टी बजाते रहते थे। चतुर्थी, एकादशी और पूर्णिमा-अमावस्या को पुरोहिताइनजी अपने वृहत् सन्तान-दल के साथ दर्शन देती थीं। पहले पाँव-पूजन होता, घर की सब स्त्रियाँ चरण छूतीं और दो-दो चार-चार पैसे भेंट करतीं, फिर आनन्द से भोजन होता। भोजनोपरान्त दक्षिणा दी जाती और पुरोहिताइनजी आशीर्वाद देती हुई घर जाती थीं। यदुनाथ दुबे और रामदीन पाण्डेय पुरोहितजी के पास बैठे 'सुमरनी' सरकाते रहते थे। कभी-कभी बैठक में जा पटैल बाबा को आशीर्वाद भी दे आते थे। नाई-धीमरों का तो कहना ही क्या था, पाँचों अँगुलियाँ घी में रहती थीं। मानों बाबाजी उन्हीं के लिए कमाई करते थे। पर्व-त्यौहारों में अन्धा-धुन्ध ख़र्च होता था। कोई कहने-सुनने वाला नहीं था। सुक्खू दहात और कुञ्जी ठाकुर अपने नाम खेत लिखाये हुए थे। लगान भी देते थे। किन्तु पास से कुछ नहीं। 'मेरो कछु नाहीं प्रभु, तेरी ही प्रभुताई है' के सिद्धान्त पर वे उन्हीं के बैलों से जुताई करते, उन्हीं का बीज बोते और उन्हीं के रुपयों से लगान पटाते थे। पाठक समझते होंगे कि ये सब काम चोरी से होते थे, किन्तु बात ऐसी न थी। ये डाके खुल्लमखुल्ला पड़ा करते थे। बाबा

यह जानकर भी कुछ न कहते थे; कोई शिकायत करता तो उत्तर देते—"बैलों से दिन भर काम लेके का भुला खिलाओ चइये।" सुन कर सब चुप हो जाते थे।

दिन कभी एक से नहीं जाते। लाभ और हानि दोनों ही विभु की पवित्र विभूतियाँ हैं। वे सब देहधारियों को दिन-रात की तरह भोगनी ही पड़ती हैं। सुनकर आप शायद हँसेंगे। पर बात सोलहो आने सत्य है। बढ़ते-बढ़ते जब मनुष्य में अहंमन्यता आ जाती है, जब वह ज्ञान-शून्य हो जाता है, तब उसके विवेक-रूपी नेत्र बन्द हो जाते हैं। उन्हें खोलने के लिए दूसरी 'विभूति' काम में लाई जाती है। आप कहेंगे पटैल बाबा धार्मिक थे, दानी थे, विवेक-बुद्धि सम्पन्न थे। उनके लिए इस विचित्र-विभूति की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु यदि सूक्ष्म-दृष्टि से देखा जाय तो उसमें भी हमारे उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार कम-से-कम निस्पृहयता की झलक तो अवश्य दिखलाई देगी। अस्तु—

एक वर्ष अनावृष्टि के कारण घोर दुष्काल पड़ा। पटैल बाबा ने प्रजा के आर्त्तनाद से व्याकुल हो सब बण्डे खुलवा दिये। कई मन अनाज नित्य बाँटा जाने लगा। घर के 'सहभोज' ने प्रकाण्ड-रूप धारण किया। वह सौ से दो सौ, दो सौ से चार सौ और इससे भी बढ़कर पाँच-छः सौ की संख्या तक पहुँच गया। यह बात महन्तजी को भी मालूम

हुई। किन्तु, इच्छा रहते हुए भी वे ऐसे लोकोपकारी पवित्र-कार्य्य से उन्हें विरत न कर सके। परिणाम यह हुआ कि आषाढ़ में बौनी के लिए बीज तक न रहा। ऋण का तक़ाज़ा पहुँचा। बेचारे पटैल बड़े संकट में पड़े। रामदीन पाण्डेय सुमरनी सरकाते हुए आये और आशीर्वाद दे एक ओर बैठ गये। पटैल बाबा को गम्भीर देख मुँह बनाकर बोले—"इसके लिए इतनी चिन्ता क्या, चलिए महन्तजी से उधार ले लें। भगवान ने चाहा तो अगली साल सब चुक जायगा।" बाबाजी सहसा हँस पड़े, बोले—"दीनबन्द ऐसी मरजी न होय। लेवे के नाम से ऊ द्वार के दर्शन करबे में मोरे पिरान निकरत हैं।" इतने में बस्ती के और लोग जमा हो गये और समझाने लगे। कई लोगों ने सहायता देने की इच्छा की पर उसे जिह्वा पर न ला सके। कारण, उन सब की छोटी-सी सहायता से होता ही क्या था? कई मन बीज लगता था। इतना उन बेचारों के लिए जुटाना दुष्कर ही नहीं, एक दम असम्भव था। किन्तु तिस पर भी वे अधीर न हुए। सब ने एक स्वर से कहा—"हमारी ज़मीन-जगह और घर-द्वार सब आप ही का बनाया हुआ है। घर-टापर और ढोर-डंगर बेचकर हम बीज और क़िस्त का प्रबन्ध करेंगे।" सुन कर पटैल की आँखों में कृतज्ञता के आँसू भर आये। वे एक प्रकार की सरल-हँसी हँस कर बोले—"मोरे लाने भैया, का सब गाँव-का-गाँव बर-

बाद करत हो। खूब कही, नाहर के ताने गौ का मारबो कौन कुरान में पढ़े हो।" लोगों ने समझाने की बहुत चेष्टा की, किन्तु आप अपने प्रण से तिल-भर भी न डिगे। जब शाम हो गई तब लाचार हो सब घर आये। दूसरे दिन पटैल बाबा के बिना जाने पटैलिन माई के पास सब यही प्रस्ताव लेकर पहुँचे और घण्टों समझाते रहे। पटैलिन बोलीं—"भैया, कछू कही न जात, दिनन को फेर है। पुरोहित महाराज जो सबरे कुटुम-कबीला को लयें परे रहतए, उनई के दरसन अब दुर्लभ है गये, और की कौन कहे।" इतने में सौभाग्य से पुरोहित जी तिलक-मुद्रा लगाये मन्त्र जपते, लम्बी-लम्बी डगें भरते, कहीं जाते दिखलाई दिये। लोगों ने बुलाया उन्हें देख बूढ़ी पटैलिन को रोना आया, कहने लगीं—"लाला, का धनहू की बदौलत ठाकुर जू अब तक पुजत रहे, अब निरधनता में उनकी कछू रीझ-बूझ नई रही। जान परत है, आकास के देवतन खाँसोई धन की तङ्गी अखरत हो, धनई से उन को मान होत है। ऊ के बिना वे कोने में परे-परे घूरा……।"

इसके आगे पटैलिन कुछ न कह सकी, ज़ोर से रो उठीं। पुरोहित जी ने लज्जित हो सिर झुका लिया, बोले—"बड़ी माई, क्या कहूँ इधर कुछ दिनों से काम की इतनी भरमार रहती है कि दम लेने के लिए अवकाश नहीं मिलता। तुम तो जानती ही हो कि पुरोहिती का पेशा कितना निकृष्ट है। जिस

का न करो वही आँखें दिखाने लगता है। फिर अकेले हमीं तो यहाँ हैं नहीं। हमारे भाई सैकड़ों इसके लिए उधार ही खाये बैठे रहते हैं। यजमान का दिल ज़रा दुःखा कि चट दूसरा द्वार देखने लगता है देखो न यह पंजू साहु की अग्रिम दक्षिणा है। पूरे महीने भर महादेव बना कर उनके यहाँ पूजा करना है। नाही करते तो बनता नहीं। ऐसा करने से जीविका का द्वार बन्द हो जाता है; पर अब मैंने प्रण कर लिया है कि इस के बाद कोई काम न लूँगा। अपने पुराने यजमान ही को प्रसन्न करूँगा। परमात्मा तुम्हारा भला करे।" इतना कह वे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चलते बने।

फिर वही चर्चा छिड़ी। बैजू नाई ने कहा—"दुबेजी, इस मामले में बाबा जी की बात मानना ठीक नहीं। वे तो धर्म के पीछे मरे मिटते हैं। वही पुरानी परिपाटी पकड़े हुए हैं। यह नहीं जानते कि अब समय बदल गया है। ख़ाली धर्म की माला फेरने से काम नहीं चलता। ऐसा ही होता तो ठाकुर जी सहायता न करते। उन्हें इतने दिन दुःख सहते होगए। शरीर सूख कर काँटा होगया। किसी के कान में भनक तक न पड़ी"

धनू चौधरी बोले—"ठीक कहत हौ भैया उपाय ज़रूर करो चइये। हाथ-पे-हाथ धर के कै दिन बैठे रहेंगे।"

भगवन्त ठाकुर मूछों पर ताव देकर बोले—"पाठक जी, चलिए हम काम सिद्ध करादें। महन्त जी के पाँवों पर गिरकर सहायता

मागेंगे, जब तक न मानेंगे। भूखे प्यासे उनके आगे पड़े रहेंगे।"

निदान, पटैलिन को ज्यों-त्यों कर समझा-बुझा के सब चुपचाप मन्दिर की ओर चल दिये।

६

महन्त जी एकान्त में बैठे कुछ गणना सी कर रहे थे। सामने एक मनुष्य हाथ बाँधे बैठा था। उसके नेत्र आँसुओं से भीगे थे। मालूम होता था, मानों किसी भारी विपत्ति में फँस उस से छुटकारा पाने के लिये महन्त जी से प्रार्थना कर रहा हो। सब लोग एक ओर बैठ गये। महन्तजी ने एक टुकड़े पर कुछ लिखकर उसे दे दिया वह चुपचाप उन्हें प्रणाम कर चल गया। सुयोग पा पं० रामदीन जी आगे बढ़ गये। महन्त जी ने पूछा—"आप सब लोग किस लिये यहाँ आये हैं?" पण्डित जी के बोलने के पहिले ही नाई-का हाथ बाँध कर खड़ा होगया और कहने लगा—"महाराज, आपके उन्हीं पटैल बाबा की फ़रियाद लेकर आये हैं। उन्हें यहां आने में बहुत लज्जा मालूम होती है, इससे हमें भेजा है। कहते थे कौन मुँह लेकर जावें?" महन्त जी अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर होकर बोले—"यह बात सत्य नहीं—प्रपञ्च-पूर्ण है। ऐसा कभी नहीं हो सकता।" नाई समझा महाराज कह रहे हैं कि पटैल बाबा को रुपये-पैसे की कभी कमी हो ही नहीं सकती। चट कह

उठा—"गुरू जी के चरणों की सौगन्द, इस समय उनकी बहुत ही बुरी दशा हो रही है। ज़रूरत न होती तो हम लोग आप को व्यर्थ कष्ट देने क्यों आते?" दुबे जी ने माला फेर कर लम्बी साँस ली। पाठक जी चुटकी बजा कर बोले—"भगवान् ऐसे दुर्दिन किसी को न दिखावे।" ठाकुर साहब बोले—"हमारे गुरू महाराज साक्षात् परमेश्वर ही हैं। मैं सच कहता हूँ, महाराज जी के रहते एक बार महा-प्रलय भी हमारा बाल बाँका नहीं कर सकता।" चौधरी जी ने आँखों में आँसू भर कर स्वीकार-सूचक सिर हिलाते हुए भक्ति का भाव दिखाया।

महन्तजी चुप बैठे थे। सहसा उठ खड़े हुए सोटा उठा लिया और लगे सब के दो-दो जमाने। पण्डित जी का तिलक पोंछ डाला। दुबे जी की सुमरनी छुड़ा ली। चौधरी जी के दो चपत जमाये। नाई को सौ बार कान पकड़ के उठने-बैठने के लिए कहा। बेचारा मारे डर के बीस-पच्चीस बार तो ज्यों-त्यों कर उठा-बैठा अन्त में हार कर भाग खड़ा हुआ। दो चेले सोटा ले पीछे दौड़े, पर उसे न पा सके। उसने ठीक चूल्हे के पास पहुँच कर साँस ली।

यह समाचार थोड़े ही समय में सारी बस्ती में फैल गया। लोग हँसी के मारे लोट-पोट होगये। कोई-कोई महन्त जी को निष्ठुर, स्वार्थी और कुटिल कह कर धिक्कारने लगे। कोई ढोंगी कह कर तालियाँ बजाने लगे। कोई-कोई उनके कपट

का भण्डा-फोड़ होते देख इतने प्रसन्न हुए कि मानों आकाश का चाँद हाथ लग गया हो। पटैल बाबा ने भी यह सब सुना, पर, उससे रोष के बदले उनके मुख पर सन्तोष की गहरी रेखा प्रकट हुई। लोग अवाक् हो गये। बूढ़ी पटैलिन ने तो सिर पीट लिया—"ऐसे पाखण्डी का भगवान सत्यानाश करे, मन्दिर में बैठ अब तक बगुला-भगत बना हमको ठगता रहा।" ऐसा कह-कह स्त्रियां महन्त जी को कोसने लगीं।

७

पटैल बाबा को चारपाई पर पड़े पन्द्रह दिन होगये। किन्तु उनकी ओर किसी ने ध्यान न दिया। महन्त से बदला लेने की प्रतिहिंसा-वृत्ति ने सब को पागल बना दिया। लोग यत्र-तत्र एकत्रित हो अहर्निश इसी विषय की अलोचना किया करते थे। गुप्त-मन्त्रणायें होती थीं और नये-नये षडयन्त्र रचे जाते थे। महन्तजी को भी इसकी ख़बर लग गई थी। वे एकान्त में बैठे उनकी मूर्खता पर हँसा करते थे, पर कहते कुछ न थे। उनके कार्य्य-क्रम में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा। व्यवहार-बर्ताव में कोई नवीनता न थी। यथा-समय वे स्कूल में जाते, मिठाई बाँटते और व्याख्यान देते थे। यह हाल देख सब को आश्चर्य होता था। कोई-कोई तो इसे भी निरा ढोंग समझते थे। किन्तु धीरे-धीरे लोगों में जो अशान्ति

और वैमनस्य के भाव भर गये थे वे दूर हो चले। वे महन्तजी को पूर्ववत् श्रद्धा-भक्ति की दृष्टि से देखने लगे। यह बात नाई को असह्य मालूम हुई। उसके हृदय में जो घोर-प्रतिहिंसानल प्रज्ज्वलित हो रहा था, उसे शान्त करने का द्वार बन्द हो गया—उसकी समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। अतएव, उसने अपने सब साथियों को चौधरीजी के यहाँ इकट्ठा किया और उत्तेजनावर्द्धक शब्दों में बोला—"हम लोगों ने इस ढोंगी महन्त से अब भी अपने अपमान का बदला न लिया तो कुछ न किया।" पण्डितजी दाँत पीसकर बोले—"क्रोध तो ऐसा आता है कि दौड़कर दाढ़ी उखाड़ लूँ।" दुबेजी बोले—"सबसे पहले मूँछें मैं उखाड़ूंगा।" ठाकुर साहब अकड़ कर बोले—"मैं योंही रह जाऊँगा। आप लोग कहें तो उसी सोंटे से बचा जी को छटी का दूध याद करादूँ।" नाई बोला—"मेरे रहते आप सब को कष्ट उठाने की क्या ज़रूरत है। कुछ ज़्यादा भाँग पिला दी जायगी। सोते समय दाढ़ी-मूँछ इत्यादि सब साफ़ कर दूँगा। हाँडी सा सफ़ाचट सिर लिये भूत बना घूमा करेगा।" चौधरी जी सुनकर खूब हँसे।

ठीक इसी समय जब वहाँ यह मन्त्रणा हो रही थी, पटैल के यहाँ एक विचित्र-अभिनय हो रहा था। कचहरी का प्यादा बाहर बैठा था। भीतर खूब अँधेरे में दो मनुष्य पटैल बाबा को पकड़े ज़बरदस्ती उनके शरीर में विभूति मल रहे

थे। पास ही मृगछाला, दण्ड-कमण्डल, चिमटा और कौपीन रखी थी। पुरोहित जी कह रहे थे—"हम सब लोगों की भलाई के लिए थोड़ी देर को सन्यासी बन जाइये और सीधे डयोढ़ी में से निकल मन्दिर में जा बैठिये। पीछे सब ठीक कर लिया जायगा।" पर, वे मानते नहीं थे। छूटने के लिये हाथ-पाँव मार रहे थे, और गिड़गिड़ा कर कह रहे थे-"महाराज, मैं बुढ़ापे में काया-चोर न बन हों। ऐसी परतिष्ठाखाँ बारम्बार परनाम है। मोय क्षमा करो और छोड़ दो।" किन्तु उनकी बात पर कोई ध्यान न देता था। अन्त में उन्होंने उन्हें पूरा सन्यासी ही बना के छोड़ा। उनके बाहर निकलते ही छोटा लड़का गले से लिपट गया। आपने पुचकार कर माँ को सौंप दिया। भोली-भाली पटैलिन बोली—"चुप रह, अभी लौट आयेंगे।" पटैल बाबा ने चट बाहर निकल चपरासी से कहा—"मैं सन्यासी पटैल तुम्हारा अपराधी सामने खड़ा हूँ, जहाँ चाहो ले चलो।" सिपाही उनकी निर्भीकता देखकर अवाक् होगया और मूर्त्तिवत् बैठा रह गया। आपने फिर कहा—"चलिये मैं तैयार हूँ।' इतना कहकर उसके साथ दिये। पुरोहित जी अपना-सा मुँह लेकर रह गये। बड़ा कोलाहल मचा। कई लोग रोते हुए उन्हें पकड़ने के लिये दौड़े। उन्हें पास आते देख पटैल ने ललकार कहा—"जो मोरो शरीर छू है, वोही सीधो नरक में जा पर

है। ऊखाँ मैं सिराप देंइ भसम कर देहों। सन्यासी से तुम्हारो का वास्ता ?" बड़े लड़के ने आकर हाथ पकड़ लिया। आपने झटका देकर हाथ छुड़ा लिया और दो तमाँचे जमाये। इतने में बैजू नाई का दल भी आ पहुँचा। वह सब से आगे बढ़ रास्ता रोकने लगा। आपने उसकी पीठ पर खूब ज़ोर से ४–६ चिमटे जमाये। वह 'हाय रे! मरारे!!" कहता हुआ भागा। पण्डित जी बगल से पोथी निकाल कुछ व्याख्यान सा देने लगे। आपने पोथी छीन कर फेंक दी। चौधरी भी झूठ-मूठ रोने की चेष्टा करते हुए बोले—"मालिक आपके बिना हम यहाँ क्या करेंगे ? हमें भी साथ लेते चलें।" आपने कह दिया—"कौन कीके सङ्ग आउत और कौन कीके सङ्ग जात है। तनक सोच के तो देखो।" इतना कह वे लम्बी-लम्बी डगें धरते आगे बढ़ गये। लोग उनके पीछे लगे चले गये। उस समय पटैलजी के मुख पर अनिर्वचनीय स्वर्गीय-शान्ति विराज रही थी। चित्त को संयत कर तथा मन पर विजय प्राप्त कर आज वे जैसे प्रसन्न जान पड़ते थे, वैसे शायद ही कभी हुए हों। उनके मुख-मण्डल पर ग्लानि, भय और लज्जा के बदले धैर्य और संतोष के पवित्र-भाव झलक रहे थे।

नाई रो-धो कर सबकी आँखें बचा पहले ही कचहरी पहुंच गया था। निदान ज्यों ही पटैलबाबा वहाँ पहुँचे, आप

दूर से नाचता-कूदता खिलखिलाता आया और बोला—"क़िस्त सब दाख़िल हो चुकी है, आप निश्चिन्त हो घर लौट चलिये।" यह सुनकर आपने उसकी ओर एक बार तीव्र-दृष्टि से देखा और लम्बी साँस ले जंगले को पकड़ कर खड़े होगये। आपका आत्माभिमान-भंडित उन्नत-मस्तक मानों आज किसी अलक्षित दैवी-शक्ति ने झुका दिया। लोग समझते थे, उस समाचार को सुन पटैलबाबा फूले न समायेंगे। किन्तु उनके मुख का भाव देख कर वे आश्चर्य के समुद्र में डूब गये। उस समय उस पर ग्लानि, लज्जा और विषाद की अमिट रेखा अङ्कित थी!

वास्तव में यह सब लीला उन्हीं महन्त जी की थी। वे पटैल बाबा के सत् की परीक्षा ले रहे थे। क़िस्त तो बहुत पहले ही पटा दी गई थी। वह मनुष्य भी अदालत का चपरासी नहीं; वास्तव में आपही का एक चेला था। वे भी पास ही एक वृक्ष के नीचे खड़े यह कौतुक देख रहे थे। पटैल के ऐसे भाव-परिवर्त्तन को देख वे विस्मय-विमुग्ध हो उठे। उन्होंने दौड़कर अपने प्रियतम-सुहृद पटैल को हृदय से लगा लिया। किन्तु उस समय वे गम्भीर चिन्ता में मग्न थे। धम से ज़मीन पर गिर पड़े और अचेत हो गये। लोग उपचार के लिये इधर-उधर दौड़ने लगे। महन्त जी डाक्टर लाने गये। किन्तु जब सब लौट कर आये तब उन्होंने पटैलबाबा को वहाँ न पाया! इधर-उधर बहुत ढुँढ़वाया किन्तु, सन्यासि-वेश-धारी पटैलबाबा फिर कभी न दिखलाई दिये!

❀ ❀ ❀

छठा आँसू



सुख का दण्ड



१

पाप का आरम्भ मनुष्य को सुखकर प्रतीत होता है। अस्तु उसमें प्रवृत होते ही वह विवेकशून्य हो जाता है। उस समय उसका लक्ष्य परिणाम की ओर नहीं रहता।

कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो परिणाम को भली भाँति जानते हैं और उससे दूर रहने की चेष्टा करते हैं। किन्तु सगति के दोष से अथवा योंही काकतालीय न्याय से एकबार—केवल एक ही बार उसके चंगुल में फंस जाने पर फिर छूटना कठिन हो जाता है। संसार में प्रायः नित्य ऐसी ही घटनायें घटती रहती हैं। पाप की ओर मनुष्य की स्वाभविक-प्रवृत्ति का रहना ही इसका कारण है! ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर ऊपर लिखा जा चुका है।

पाप-पुण्य का आद्यन्त एक दूसरे से भिन्न रहता है। इसी से पहला सुगम और दूसरा कठिन प्रतीत होता है। यहाँ इस बात का उल्लेख भी उचित जान पड़ता है कि संसार में

परिणाम-दर्शी मनुष्य बहुत रहते हैं। वह उनका स्वभाव-सिद्ध गुण नहीं है। तदनुसार उनमें अन्य-कोटि के मनुष्यों का रहना ही अधिकतर सम्भव है। किन्तु इसके साथ-ही-साथ उन सब में एक ऐसी दैवी-शक्ति निहित रहती है जो कार्य्यारम्भ के पूर्व ही उसके हिताहित का ज्ञान कराती है। यदि सदा-सर्वदा उसी का प्राधान्य रहे और पिशाच-वृत्ति निर्बल हो तो यह बात निर्विवाद है कि मनुष्य से खोटा काम कभी न हो। किन्तु मन चञ्चल होता है, उसमें एक प्रकार के विचारों का रहना असम्भव है। इसी से उपरोक्त दोनों शक्तियों का अस्तित्व न्यूनाधिक होता रहता है। जिससे विविध-धर्म्मों की सृष्टि होती है, और वेही कार्य्य किंवा व्यापार के रूपक दृग्गोचर होते हैं।

पाप बड़ा ही दुर्दण्ड पिशाच है। एक बार उसके चंगुल में फँस जाने पर मनुष्य का छुटकारा एकदम असम्भव हो जाता है। उसे पूर्णतया उसी का दास बनकर रहना पड़ता है और फिर तो वह पराधीन ही ठहरा-जानकर भी क्या कर सकता है?

हाँ एक बात अवश्य है। श्री गणेश ही में यदि परिणाम-स्वरूप प्रकृति के अवंधनीय-विधान द्वारा उसे समुचित दण्ड मिल गया, तो समझना चाहिये करुणामय जगदीश्वर का उस पर विशेष अनुग्रह हुआ। वह उसकी भीषण चपेटों से बच

गया। मानो उसका पुनर्जन्म हुआ। अन्यथा उसमें मनुष्य की आसक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायगी। वह उसके तीव्र विषाक्त-मद में ऐसा अभिभूत हो जायगा कि मनुष्य-शक्ति का उसे उस भीषण नर्क-कुण्ड से निकालना एकदम असम्भव हो जायगा। उस पर शिक्षा किंवा उपदेश का कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा!

यहाँ एक ऐसी ही घटना का उल्लेख किया जाता है। आशा है, उससे पाठकों का मनोरञ्जन होगा।

कोई १४-१५ वर्ष पहले की बात है। मैं उन दिनों······ की एक फ़ैक्टरी में काम करता था और उसकी अल्प-आय द्वारा ज्यों-त्यों कर अपना जीवन बिताता था। शहर के बाहर एक मामूली मकान का छोटासा कमरा भाड़े पर लिये हुए था। उसके पासही कई बड़ी-बड़ी इमारतें थीं--किसी रईस ने किराये पर देने के लिए बनाई थीं। प्रायः उच्च-कोटि के राज्य-कर्म्मचारीगण वहाँ आकर रहते थे। वहाँ से सरकारी-दफ़्तर और बड़ी-बड़ी अदालतें बहुत पास पड़ती थीं। अस्तु, अधिक भाड़ा देकर—वहाँ का रहना बाबू लोग बहुत पसन्द करते थे। इसी उद्देश से वे बनवाई भी गई थीं। मेरे मकान से सटे हुए एक सुन्दर-सुसज्जित प्रसाद में एक मुसलमान सज्जन रहते थे। आपको लोग आदर-सूचक शब्दों में मौलाना साहब कहते थे। उनके मित्र एक बङ्गाली महाशय थे। वे

पास के दूसरे मकान में रहते थे। दोनों अकेले थे। एक सिविल-कोर्ट के क्लर्क (मुन्सरिम) तथा दूसरे पी० डब्ल्यू० डी० के दारोग़ा थे। परमात्मा की कृपा और पूर्व के पुण्य से दोनों बड़े सुखी थे, हँसमुख थे। दिनरात हाहा-हीही की विकट-ध्वनि से बैठक का कमरा निनादित करते रहते थे। सदा हँसता हुआ मुँह लेकर सबसे मिलते-जुलते, वार्त्तालाप करते और घण्टों गप-शप लड़ाते थे।

ग्यारह-बारह बजे खूब हँसते-खिलखिलाते दफ़्तर जाते और ४ बजे मूछों पर ताव देते हुए लौटते थे। पाकिट खूब गर्म कर लाते थे। आते ही स्वादिष्ट भोजन करते, फल खाते और धड़ाधड़ बोतलों के कार्क खोलते। फिर घूमने निकलते। शाम को लौटकर फिर भोजन करते, हारमोनियम बजाते, नाविल पढ़ते और आमोद-प्रमोद में समय बिताते थे। रसोई के लिए पण्डा, पानी के लिए कहार, बैठक साफ़ करने के लिए फ़र्राश और हुक्का भरने, बीड़े बनाने आदि के लिए दो नौकर थे। गर्मी में शाम होते ही बाहर आराम-कुर्सियाँ डाल दी जातीं, टट्टियाँ सींची जातीं, पंखे चलने लगते और अनार का शर्बत तैयार हो कर अलग-अलग दो लोटों में रख दिया जाता था। हुक्का अकेले ख़ाँ साहब पीते थे। बाबू साहब को चुरुट पीने का शौक़ था। मद्रास से पारसल द्वारा नामी चुरुट मँगाया करते थे। इष्ट-मित्र जो मिलने जाते, पान खाते-

खाते हैरान हो जाते थे। चुरुट पीते-पीते बेचारों का सिर दर्द करने लगता था। दोनों थे बड़े ही मिलनसार, छोटे-बड़े सब से समान-भाव से मिलते थे। भूखों को भोजन देते तथा दीन-दरिद्री की रुपये-पैसे से सहायता करते थे। नौकरों को जाड़े में अच्छे ऊनी कपड़े बनवा देते तथा ग़रीबों को कम्बल बाँटते थे। मैं उनके पास ही रहता था। जब कभी मेरी कोठरी के पास से निकलते, कुशल-प्रश्न करते, हाथ मिलाते और कभी-कभी साथ भी लेजाते थे। उनके प्रेम को देख छुट्टी में मैं स्वयं घण्टा-आध-घण्टा उनके पास बैठ आता था। वे मुझ से सगे-सहोदर की नाईं मिलते और सत्कार करते थे। हाँ, दिल्लगी में 'ताँगे का घोड़ा' कह कर चिढ़ाते अवश्य थे। किन्तु मैं उनके व्यवहार से इतना प्रसन्न था कि इस व्यंगोक्ति की कुछ परवा ही नहीं करता था।

२

मैं जिस समय राम का नाम लेता हुआ आफ़िस जाता था, उस समय बाबू लोग मख़मल-मंडित गद्दों पर ऊनी-दुशाले ओढ़े सुख की नींद लेते थे। दोपहर को कड़ी धूप में जब मैं हाँफ़ता हुआ आता तब वे ताँगे पर बैठे कचहरी की ओर जाते दिखलाई देते और मेरी दशा पर मन-ही-मन हँसते और दिल्लगी करते थे। मैं घर पर जब कभी अपनी दशापर विचार

करता, तब बाबुओं का वह स्वर्गीय-सुख स्वप्न सा ज्ञान पड़ने लगता था। मैं आप-ही-आप कहने लगता—"ये सुकर्म्मी जीव हैं, पूर्व की कठिन-तपस्या बिना संसार में ऐसा सुख कैसे मिल सकता है? जो कुछ इन्होंने पूर्व में कर लिया है, उसी का फल पारहे हैं। ऐसा कहते-कहते अपने भाग्य को भी कोसने लगता था। किसो प्रकार रो-धो कर अपना हृदय हल्का कर लेता था। उस समय मुझे यह नहीं मालूम था कि दरिद्रता परमात्मा की सबसे बड़ी दैनगी है—असीम कृपा है संसार के दहकते हुए नरक-कुण्ड से बचाने का अमोघ-अस्त्र है! दिनभर कठिन-परिश्रम करने के बाद रात को साग-रोटी खा आनन्द से पैर फैलाके सो रहने में जो सुख है, वह भोग-विलास का कीड़ा बनकर रहने में नहीं है। जो अहर्निश आमोद-प्रमोद एवं सुखकी गोद में खेला है, वह वास्तव में संसार के सच्चे आह्लाद से वंचित है। इस ईश्वर-प्रदत्त दुर्लभ पदार्थ का स्वर्ग में भी अभाव है!

एक दिन बाबुओं के यहाँ नाच होने वाला था। नौकर-चाकर जहाँ-तहाँ मकान के सजाने में दत्तचित्त थे। लम्बे-चौड़े आँगन में सुन्दर सभामण्डप तैयार किया था। चारों ओर चार गैस के लैम्प जल रहे थे। पुष्पाधारों से तत्काल के तोड़े हुए स्निग्ध-पुष्प सुगन्ध फैला रहे थे। केवड़े और गुलाब के जल का छिड़काव हो रहा था। ख़स की मनोहारणी सुगन्ध

दर्शकों का चित्त चुराती थी। एक ओर टोकरियों में फल, फूल और मेवे, मिठाई का भाण्डार भरा हुआ था। दूसरी ओर विजया का बाज़ार गर्म हो रहा था। पान के बीड़े तैयार हो रहे थे। बहुत सी कुर्सियाँ सिलसिले से जमाकर रखवा दी गई थीं, उनपर मख़मली गद्दे पड़े हुए थे। विश्राम के लिए ४-६ ईज़ी-चेयर्ज़ अलग रक्खी हुई थीं। अभिप्राय यह कि आगत-व्यक्तियों के सत्कार का पूरा-पूरा प्रबंध किया गया था, किन्तु उस समय बाबुओं को एक ऐसे शिक्षित मनुष्य की आवश्यकता थी, जो उन अतिथियों की समुचित अभ्यर्थना कर सके। गँवार नौकर बहुधा इस अवसर पर चूक जाते हैं। अस्तु, इसी से ख़ाँ साहब ने मुझे बुला भेजा, मैं थका-माँदा आफ़िस से आ, कातर दृष्टि से चूल्हे की ओर ताक रहाथा। बुलावा सुनकर तुरन्त दौड़ा गया। मौलाना साहब ने आग्रह-पूर्वक मुझ से वह भार ग्रहण करने को कहा। मैंने स्वीकार कर लिया। बस फिर क्या था, बंगाली माशा (महाशय) मारे खुशी के उछल पड़े। गटागट एक बोतल ख़ाली कर गये। मैं उनकी इस विचित्र-प्रसन्नता पर मनही मन खूब हँसा।

निदान ६॥ बजे से आमन्त्रित-व्यक्तियों का आना प्रारम्भ हुआ। बात-की-बात में सब कुर्सियाँ भर गईं। किन्तु मनुष्यों का ताँता न टूटा। लाचार होकर दो तीन बैंचें बिछानी पड़ीं। नाच शुरू हुआ। मैं एक तरफ़ बैठकर बीड़े तैयार करने लगा।

दस-दस मिनिट में ताज़े तैयार किये हुए पान लेकर दौड़ता, हँस-हँसकर सबको देता था। सिगरेट दे-देकर अपने हाथ से सुलगाता था। नौकर हुक्के वालों को चिलम गर्म करने का ठेका लिए हुए थे। बीच-बीच में भङ्ग का रंग भी जमाते जाते थे। आगन्तुक–व्यक्तियों में मकान के मालिक भी थे। वे मारवाड़ी सेठ थे। अवस्था ५० के लगभग थी। मामूली पगड़ी बाँधे और अँगरखा पहने हुए थे। उनके पास ही दूसरी कुर्सी पर १४–१५ वर्ष की एक अनुपम लावण्यमयी सुन्दरी बैठी हुई थी। यह उनकी ज्येष्ठा कन्या थी। स्थानीय हाई-स्कूल में शिक्षा पारही थी। तदनुसार वेश-भूषा भी चित्ताकर्षक थी। पाँव में पालिशदार बढ़िया अङ्गरेज़ी बूट और हाथों में दो-दो सोने की चूड़ियाँ पहने हुए थी। गले में बहुमूल्य रत्न–खचित चन्द्रहार शोभा देरहा था। बदन में गुलाबी ऊनी कपड़े पर हलके नीले रंग की रेशमी साड़ी झकझक कर रही थी! वह अभी तक अविवाहित थी। मुख-मण्डल से निर्दोष स्वर्गीय-लावण्य प्रस्फुटित हो रहा था। उस पर भोलेपन का अखण्ड-राज्य था। सौन्दर्य की उस सजीव–प्रतिमा को देख मुझे लोकोत्तर आनन्द प्राप्त हुआ। मैं उसे साक्षात् स्वर्ग की देवी समझ मन-ही-मन प्रणाम करने लगा। बाबुओं पर भी शायद उस अद्भुत वशीकरण-मन्त्र का कुछ प्रभाव पड़ा था, क्योंकि वे तब से

इकटक उसी की ओर देख रहे थे। नाच समाप्त होने पर सब लोग चले गये। मालिक मकान भी विदा माँगने लगे। बाबुओं ने उन्हें दो मिनिट के लिए ठहरा लिया। कुछ इधर-उधर बातें होजाने पर दोनों बाबुओं ने उठकर उन्हें पुष्प-मालाएँ पहनाईं। उनकी कन्या को तो इतनी मालाएँ पहनाईं गईं कि अन्त में वह उकता कर उठ खड़ी हुई। मारवाड़ी भी उठ बैठे और विदा माँगकर चले दिये। बालिका ने एक बार मालाओं पर दृष्टि-निक्षेप कर बाबुओं की ओर कृतज्ञता-भरे भाव से देखा और हँसकर धीरे-धीरे पिता का अनुकरण किया!

३

उस दिन से बाबू लोग उक्त मारवाड़ी-सज्जन के यह प्रायः नित्य बैठने जाया करते थे। वृद्ध-मारवाड़ी भी उनका यथोचित सत्कार करते थे और ज़मींदारी के मामलों में सलाह लेते थे। अदालत के क़ानूनी कामों से उक्त सज्जन अभिज्ञ नहीं थे। अतएव इस काम के लिए उन्होंने मौलाना साहब से सहायता की याचना की। उसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। अभी ख़ाली मकान हो का सम्बन्ध था, इस दूसरे सम्बन्ध ने उस सूत्र को और भी दृढ़ कर दिया। दीर्घकाल के सहवास ने उन्हें एक प्रकार से उस परिवार का

आत्मीय ही बना दिया था। दोनों महाशय मारवाड़ीजी के कुटुम्बियों से खूब हिलमिल गये थे। घर की बूढ़ी मालकिन उन्हें पुत्र की नाईं मानती थीं। सेठजी की अनुपस्थिति में भी दोनों बैठक में डटे पान-सिगरेट उड़ाया करते थे। सेठजी की कन्या अब उन्हें अपना निज का ही समझने लगी थी। वह उनसे निःसङ्कोच मिलती-जुलती थी। घण्टों पास बैठकर बातचीत करती रहती थी। वे ओढ़ने-पहनने और खाने-पोने की कई बहुमूल्य वस्तुएँ ला-ला कर उसे देते थे और वह उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न होती थी। आत्मीयता अधिक बढ़ जाने से कन्या के माता-पिता ने उसके इस कार्य्य में किसी प्रकार की बाधा न डाली। बालिका के मन में जो पवित्र-स्नेह का अँकुर जमा था, वह दिन-दिन पुष्ट होता गया।

इसके बाद सेठ जी पर एक बड़ा ही पेचदार मामला आ पड़ा। उनकी सारी सम्पत्ति हाथ से निकल जाने वाली थी। उन्हीं के एक आत्मोय ने जाल रचकर सम्पत्ति हड़पने का विचार किया था। उस में मौलाना साहब ने सेठजी की खूब सहायता की। उनके परिश्रम से सेठ जी की जीत हो गई—दावा ख़ारिज हो गया। बस उस समय से उन पर सेठ जी का अधिक अनुराग हो गया। वे उन्हें श्रद्धा-भक्ति की दृष्टि से देखने लगे। मुझे जब इसका पता लगा तब मौलाना साहब के हृदय की विशालता पर मुग्ध होगया। उन्हें बधाई देने

के लिए दौड़ा गया। किन्तु उन्होंने उसे दिल्लगी में उड़ा दिया।



दूसरे वर्ष सेठ जी ने अपनी कन्या का विवाह जोधपुर के सेठ छगनलालजी के पुत्र के साथ कर दिया। दोनों बाबुओं ने इस में सहर्ष योग दिया। बङ्गाली महाशय ने अपनी ओर से वर-कन्या को एक-एक जड़ाऊ अँगूठी भेंट की। मौलाना साहब भी प्रसन्न हो विदाई के समय एक बढ़िया चन्द्रहार कन्या के गले में डाल गये। उनके इस व्यवहार से बूढ़े सेठ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने गद्गद् हृदय एवं अश्रु पूर्ण नेत्रों से दोनों सज्जनों की प्रशंसा करते हुए कहा—"परमात्मा ने आपको जो सहानुभूति-बुद्धि दी है, वह सँसारियों के लिए दुर्लभ है। आप मनुष्य नहीं—मनुष्य रूप में साक्षात् देवता हैं। आप लोगों ने मुझे जिस कृतज्ञता-पाश में आवद्ध किया है उससे इस जन्म में मुक्त होने का नहीं।" कहते-कहते सेठजी का कण्ठ रुद्ध हुआ। बङ्गाली बाबू कुछ समय तक नीची-दृष्टि किये कुछ सोचते रहे। फिर आँखों के आँसू पोंछ चुपचाप घर की ओर चल दिये। मौलाना साहब भी उदास मन से लौटे। इसके बाद बाबू लोग सेठ जी के यहाँ कम आते-जाते दिखलाई देते थे। घर में भी पहले जैसी चहल-पहल नहीं सुनाई देती थी—सदा उदासी दिखलाई देती थी। मैं यदि कभी उनके पास

पहुँच जाता तो वे दो-एक मामूली बातें करके टाल देते थे। काम-काज में भी पहले जैसी स्फूर्ति एवं उत्साह नहीं रहा था। खान-पान, और आमोद-प्रमोद में, अब पहले जैसा आनन्द नहीं आता था। उनके इस विचित्र भाव-परिवर्त्तन को देख मैं मन-ही-मन कहता था कि ये बड़े प्रेमी जीव हैं, प्रेम के साक्षात् अवतार ही हैं। एक विजातीय, विदेशी मनुष्य के परिवार से इतनी घनिष्ट-आत्मीयता कभी नहीं देखी। इनके हृदय में जो पवित्र, निःस्वार्थ-स्नेह भरा है वह स्वर्ग के देवताओं को भी दुर्लभ है, मनुष्य की तो गिनती ही क्या है ? परमात्मा यदि कवियों के हृदय में इस देव-दुर्लभ प्रेम का स्रोत बहा दे, तो फिर क्या कहना, सोने में सुगन्ध आ जाय ! किन्तु उसकी रचना ही ऐसी कुछ अद्भुत है कि बुद्धि काम नहीं करती। विधि की इस विचित्र सूझ पर किसी ने सत्य कहा है कि—

सब नदियाँ जल भरि भरि रहियाँ, सागर किस विधि खारी।
उज्ज्वल पङ्ख दिये बकुला को, कोयल किन गुण कारी॥
सुन्दर नयन मृगा को दीन्हें बन-बन फिरत उजारी।
मूरख हो धन-जन सम्पन्ना पण्डित फिरत भिखारी॥

उसके बाद बाबू लोग छुट्टी लेकर घर चले गये। मैं भी वह स्थान त्याग दूसरी जगह बस्ती में अपने परिवार के साथ रहने लगा और थोड़े ही दिनों में इन सब बातों को बिलकुल ही भूल गया।

एक दिन मैं ऑफ़िस से लौटा द्रुत-गति से घर चला आ रहा था कि अचानक मार्ग में किसी की पुकार सुनाई दी। मैं खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा। इतने में एक मनुष्य ने निकट आ मुस्कराकर मुझे प्रणाम किया, मैं झट पहचान गया। वह बङ्गाली महाशय का पुराना भृत्य था। मैंने कहा—"कालिकाप्रसाद, तुम यहाँ कहाँ?" उसने एक 'इनविटेशन कार्ड' हाथ में देकर कहा—"बाबू लोग आ गये हैं। आज जलसा होने वाला है। शाम को ज़रूर आइयेगा।" इतना कह वह फुर्ती से चला गया। मैं प्रसन्न होता हुआ घर पहुँचा और कुछ खा-पीकर उसी अपने पुराने अड्डे पर जा पहुँचा।

कमरा आज भी खूब सजा हुआ था। दरवाज़े के सामने दो आदम-क़द आइने लटके हुए थे। ताश के कई सेट ग़लीचे पर बिखरे पड़े थे। ख़ाँ साहब हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। बङ्गाली बाबू पैर फैलाये आराम कुर्सी पर लेटे चुरुट से फक-फक धुआँ फेंक रहे थे। मदमत्त आरक्त-नेत्र दर्शन-शक्ति विहीन थे। आवाज़ पहचान कर ख़ाँ साहब हर्ष-ध्वनि करते हुए छटपटाते मेरे पैरों के निकट आये और हाथ पकड़ कर भीतर लिवा ले गये। बङ्गाली बाबू ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया। ख़ाँ साहब उपालम्भ के रूप में कहने लगे—"यार, तुम तो बड़े बे-मुरव्वत हो। जब से शहर में गये इस तरफ़ मुँह तक न फेरा। बीबी की मुहब्बत ने दोस्ती का मज़ा किरकिरा कर

दिया। अब शायद उसमें वह लुत्फ़ ही न आता हो। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ कहिये ख़ैरियत तो है?" बङ्गाली बाबू आँखें नचाते हुए बोले–"अजी, आप तो ऐसे भागे जैसे गधे के सिरसे सींग। गोपियों के प्रेम ने मथुरा की ख़बर ही भुला दी!"

मैंने उनके ताने चुपचाप सह लिए और हँसकर कहा–"अपना दोष मेरे सिर क्यों मढ़ रहे हो? आप ही मुझे छोड़कर यहाँ से चले गये थे। फिर मैं अकेला इस एकान्त-स्थान में क्या करता? लाचार होकर बस्ती में जाना पड़ा! आने का हाल मालूम हो जाता तो ज़रूर मुलाक़ात करता। मगर यहाँ तो सवेरे से शाम और शाम से सबेरा। दोस्तों से मिलने के लिए फुरसत ही कहाँ? आपका पता दे तो कौन?"

सुनकर ख़ाँ साहब हँसने लगे। बोले—'यार, योंही तुम्हें भला-बुरा कह डाला, माफ़ करना।" बंगाली बाबू ने करवट बदल सिगरेट का केस आगे बढ़ा दिया। नौकर पान दे गया। इधर-उधर की बातचीत होने लगी। इतने में गाने-बजाने वाले आ पहुँचे। मैंने समझा था कि रंडी का नाच होगा। पर बात उलटी निकली। शहर के कई लुच्चे शराब पीकर वाद्य-यन्त्रों के साथ मनमाने अश्लील और भद्दे-गाने गाने लगे, बीच बीच में बङ्गाली बाबू अपनी निराली कूद-फाँद करते जाते थे। मियाँ जी सीधे लेटे हुए 'वाह वाह' 'शाबाश' 'क्या ख़ूब' 'अच्छा समा बँधा' की रटना लगाये हुए थे। उनकी यह

निर्लज्जता मुझसे नहीं देखी गई। सटकने का मौक़ा ताकने लगा। किन्तु बाहर से फाटक बन्द था। निदान उन लोगों की आँख बचा धीरे से बग़ल के दूसरे कमरे में जा बैठा। गाना सुनने की ओर से चित्त हट ही गया—निष्क्रिय देख शीघ्र ही निद्रा-देवी ने आ दबाया। मैं बेञ्च पर पैर फैलाकर सो रहा।

५

आधी-रात के समय किसी चीज़ के खटके से मेरी नींद खुल गई। आँखें मलकर उठ बैठा। देखा गाना-बजाना बन्द होकर, कमरे में निस्तब्धता का अटल-साम्राज्य है। मैं दौड़कर बाहर जाने लगा कि इतने में पास ही लैम्प का प्रकाश दिखलाई दिया। बङ्गाली बाबू एक स्त्री से कुछ बातचीत कर रहे थे। मैंने उस स्त्री के मुख-मण्डल पर तीव्र-दृष्टि डाली। जो कुछ देखा उससे मैं आश्चर्य्य के समुद्र में डूब गया। नगर के सुप्रसिद्ध सेठ रूपचन्द की पुत्री और छगनलाल जी की पुत्र-वधू सुशीला ऐसे घोर पाप में लिप्त है। मैंने—"हा कलंकिनी!" कहकर घृणित दृष्टि से उसकी ओर देखा। किन्तु, वह उसी पहले जैसे निर्दोष-निष्कलंक मुख से सरल-हँसी हँसती हुई भीतर चली गई। मैं विस्मय-विमुग्ध नेत्रों से उस दृश्य को देखने लगा। वह भीतर बैठी हुई बड़ी देर तक उनसे

हँस-हँसकर बातें करती रही। किन्तु, पीछे उसके मन का भाव बदलता हुआ दिखलाई दिया। मुख पर क्रोध के चिह्न प्रकट हो आये। "छिः पापी, पाखण्डी। आज तुम्हें पहिचान गई। तुम किस कारण मुझे प्यार करते थे, यह भी स्पष्ट समझ में आ गया। मनुष्य कहाँ तक जघन्य हो सकता है, इसका भी पता लग गया। अब तुम्हारे साथ सम्भाषण करने में मुझे घृणा मालूम होती है। परमात्मा तुम्हारे छल का अवश्य दण्ड देगा।" इतना कह ज्योंही वह जाने के लिए उद्यत हुई त्योंही मियाँजी द्वार रोककर खड़े हो गये। यह देख उस कोमलाङ्गी युवती ने बड़ी ही विकट-मूर्त्ति धारण की। उसके नेत्र घोर-प्रतिहिंसानल में धक-धक करने लगे। शरीर क्रोध से थर-थर काँपने लगा। वह दाँत पीसती हुई बिजली की नाईं कड़क कर उस मदोन्मत्त मुसलमान युवक की ओर दौड़ी और उसे धक्का दे नीचे गिरा दिया। गिरते समय उनका सिर चौखट से टकरा गया और उससे अविराम रक्त-धारा बह निकली। यह देख बङ्गाली बाबू उसकी ओर लपके किन्तु उसने हुक़्का उठा ज़ोर से उनकी ओर ऐसा ताककर फेंका कि वह सीधा उनकी छाती में जा लगा और वे "आह! मार डाला" कहकर वहीं लोट गये।

मैं पत्थर की मूर्त्ति की नाईं निश्चल-निश्चेष्ट हो वहीं खड़ा रह गया। वह लोमहर्षक वीभत्स-दृश्य मुझे किसी भयावह

नाटक के पटान्तर्हित–अभिनय की भाँति बोध होने लगा। एक डग आगे बढ़ने, जिह्वा से एक शब्द निकालने, का साहस न हुआ। नेत्र स्पन्दन-हीन हो दीपालोक से भी अधिकतर उज्ज्वल एवं दीप्तिमयी उस रमणी–मूर्त्ति में गड़कर रह गये।

देखते-देखते आँखें चौंधिया गई। सिर में चक्कर आ गया और मैं "हा हन्त।" कह कर ज़मीन पर गिर पड़ा। चेतना आने पर मैंने रमणी को वहाँ न पाया। नौकर-चाकर कोई वहाँ न था। अन्य कोई उपाय न देख मैं स्वयं डॉक्टर लाने के लिये अस्पताल की ओर दौड़ा। डॉक्टर ने आकर जाँच की। बङ्गाली बाबू तो ठंडे पड़ चुके थे। ख़ाँ साहब घड़ियाँ गिन रहे थे। उन्हें शीघ्र उठवा कर अस्पताल पहुंचाया गया। चिकित्सा होने लगी। डाक्टर ने कह दिया चोट साँघातिक है, बचने की आशा बहुत कम है। इसके बाद दो मास तक ख़ाँ साहब चारपाई पर पड़े-पड़े पीड़ा से कराहते रहे। कभी-कभी पागलों की भाँति प्रलाप भी करने लगते थे। मैं नित्य सायंकाल उनसे अस्पताल में मिलता था। कभी-कभी बातचीत भी होती थी। किंतु उसमें पश्चात्ताप ही की मात्रा अधिक रहती थी। मैं परमात्मा से उनके आरोग्य–लाभ की प्रार्थना किया करता था, और दुःख से अधीर हो चारपाई के पास बैठकर रोता था। चिकित्सा अच्छी हो रही थी।

किन्तु भगवान् की इच्छा उन्हें संसार में रखने की नहीं थी--एक दिन उनकी अवस्था बहुत बिगड़ गई। डाक्टर ने मुझे बुला भेजा। उस दिन मैंने उन्हें पहले से कुछ प्रसन्न पाया। उनकी आत्मा चिरशान्ति के लिए छटपटा रही थी। मैंने निकट बैठकर उन्हें आने की सूचना दी। वे विकार-ग्रस्त नेत्रों से मेरी ओर देखकर रो उठे। आँसुओं की धारा बह निकली मेरा हाथ पकड़कर बोले—"प्यारे दोस्त ! तुम बड़े ख़ुश-क़िस्मत हो। ख़ुदा ने तुम्हें गाढ़े पसीने की कमाई से ज़िन्दगी बसर करने का हुक्म सादिर किया। यही उसकी बड़ी मिहरबानी है। यह एक ऐसी बख़्शिश है जिसका शुक्र अदा करना इंसान की ताक़त के बाहर है। दुनिया के सारे ऐशो-आराम उसकी बद्दुआ के नतीजे हैं। नज़ीर के लिए मैं दोज़ख़ी कीड़ा सामने पड़ा हूँ। जिस पाक-मुहब्बत से उस नेकबख़्त को पहले देखा था वही बहिश्त का दरवाज़ा पाक-पैग़म्बर का ख़ुदाई पैग़ाम था। पर अब उस ग़लती के रफ़ा करने का वक्त नहीं है। ख़ुदा के पास आख़िरी इन्साफ़ के लिए मुझे जल्द जाने का हुक्म है। तुम सब मिलकर दुआ करो, जिसमें ख़ुदावन्दकरीम मुझे तस्कीन बख़्शे।" इतना कह ख़ाँ साहब संसार से चल बसे। मैं उनकी अंत्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध करा खिन्न-मन से घर लौटा।

जब से कई वर्ष बीत गये। किन्तु बाल्य-काल की सरल

हँसी हँसनेवाली सेठ-कन्या की वह रुद्र-मूर्त्ति और ख़ाँ साहब की वह अन्तिम-स्मृति मुझे रह-रहकर संसार की मलिनता एवं निःसारता का पाठ पढ़ाती है। मुझे ऐसा बोध होने लगता है मानों वे घटनाएँ सजीव हो मेरे नेत्रों के आगे नाच रही हैं।

❀ ❀ ❀

सातवाँ आँसू

मा

झी

 का 

घा

ट

१

बैजू जाति का माझी था और नाव चला कर अपना कुटुम्ब पालता था। उस के पास मुंह-देखा व्यवहार न था। वह छोटे-बड़े सब को समान भाव से मानता और सहायता के लिये तैयार रहता था। जहां और-और माझी लोग ग़रीब चरवाहों, मज़दूरों और लकड़हारों को तंग करते तथा घंटों पुकारने पर भी नाव नहीं लाते थे वहां बैजू माझी रात को आँधी और पानी के उपद्रव की परवा न कर नाव लेजाता और उन्हें पार लगा देता था। अंधे, लूले, लंगड़े और भिखमंगे सदा उसी की नाव से उतरते थे। सोते समय भी बैजू को अपने कर्त्तव्य का पूरा-पूरा स्मरण रहता था। वह कैसी ही गहरी नींद में पड़ा खुर्राटे लेरहा हो, कान में भनक पड़ते ही उठ बैठता और निधड़क नाव खोल देता था। जीवन से अधिक उसे परोपकार की चिन्ता रहती थी। इसी महाव्रत ने उसे धर्म्म-मय बना दिया था। वह ऋतुओं के अनुसार उतराई कम-अधिक नहीं करता था; जैसा कि माझी लोग बहुधा

किया करते है। उसका एक ही रेट था। सब से खेवा पीछे एक पैसा लेता था। यदि कभो कोई कुछ पुरस्कार के रूप में देने लगता तो वह गंगा-मैया की दुहाई देकर लौटा देता था। पूछने पर कहने लगता—"अधिक लेने से नियत बिगड़ जायगी। आज आपसे लिया कल दूसरे से लेने की इच्छा होगी और फिर धीरे-धीरे उसकी आदत पड़ जायगी। फल यह होगा कि जिस तरह आप प्रसन्न होकर यह इनाम देरहे हैं, उसी तरह एक दिन तंग होकर इस से भी बड़ा इनाम देने के लिये लाचार होंगे।" बैजू की सत्य-निष्ठा, परोपकारिता, स्पष्ट-वादिता एवं प्रामाणिकता से सभी अधिकारी सन्तुष्ट थे। उसे ठेके की बहुत ही थोड़ी रक़म देनी पड़ती थी। बस, घाट से जो आय होतो थी वह उस के जीवन-निर्वाह के लिये यथेष्ट थी। वह अपना दायित्व भली भांति जानता था और अपने नौकरों को यह कह कर सचेत करता रहता था कि उनकी थोड़ी सी असावधानी से सैकड़ों मनुष्यों के प्राण संकट में पड़ सकते हैं।

२

बैजू एक बहुत बड़े परिवार का अभिभावक था। सब मिल कर ८-१० प्राणी उस के द्वारा जीविका पाते थे। किन्तु अन्यान्य भार-ग्रस्त गृहस्थी की नाईं उसे कभी किसी साहूकार

से धन की याचना नहीं करनी पड़ी। विवाह-शादी और पर्व-त्यौहारों में उनकी नाईं उसे अर्थ-संकट में नहीं फँसना पड़ा। वह सदैव प्रसन्न-चित्त रहता था। अपने सत्य एवं निश्छल व्यवहार पर उसका अटल-विश्वास था। वह सदा यही कहा करता था कि यदि मैंने कभो किसी का दिल न दुखाया होगा किसी का अनिष्ट न किया होगा तो सत्यरूप जगदीश्वर मुझे भी दुखी न होने देंगे। उसका कहना सत्य ही था। जो सारे संसार का शासक और पालक है, राजा से ले कर रंक तक जिस के एकही (प्रकृतिरूपी) न्याय सूत्र में बंधे हुए हैं, जिस के निकट 'प्रत्यक्ष' और 'परोक्ष' का भेद नही है, जो घट-घट-वासी है तथा जिससे कभी कोई भूल नही होती, वही हमारा सच्चा न्यायाधीश है, उस के द्वारा 'भले' काम का 'बुरा' बदला नहीं मिल सकता। इस धंधे को लोग भलेही निकृष्ट कहें किन्तु बैजू उसे बहुत ही महत्व-पूर्ण समझता था। उसे भगवान ने जो सुख-स्वाच्छन्द्य दिया था वही उस के लिये यथेष्ट था। एकान्तवास, मुक्त-स्थान, स्वच्छवायु तथा प्रातः-संध्या के नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य उसे संसार का सच्चा-सुखी बनाये हुए थे। सपरिश्रम-जीविका एव निर्दोष-स्वास्थ्य के साथ कौटुंबिक सुख एवं ईश्वराधना का सम्मिश्रण हो जाय तो फिर संसार ही को स्वर्ग समझ लेना चाहिये। स्वर्ग में इस से अधिक और सुख

ही क्या है? अस्तु बैजू को भगवान ने सब सुख दिया था। केवल एक पुत्र के लिये कभी-कभी वह चिन्तित हो उठता था। इसके लिये वह भगवती-गंगा से सदा प्रार्थना करता रहता था। प्रति वर्ष एक नई वस्तु उनकी भेंट करता था। इसके अतिरिक्त वह प्रति सोमवार को निराहार व्रत करता, ब्राह्मण-भोजन कराता साधु-महात्माओं की सेवा करता और सबका आशीर्वाद प्राप्त करता था। एक सोमवार ही नहीं वर्ष के सभी त्योहारों पर वह भगवान के निमित्त कुछ-न-कुछ करके ही रहता था। निदान, साधु सेवा से हो, अथवा गंगा-मैया की प्रसन्नता ही से हो, उसे चौथे वर्ष पुत्र का मुख देखने को मिलगया। वृद्ध बैजू का मन उछल कर सप्तम-स्वर्ग पर जा चढ़ा। बड़ी धूम-धाम से जन्मोत्सव मनाया गया। चैत का महीना था। आम बौर रहे थे। कोयल की कूक चित्त को चुरा रही थी। गंगा के सुविशाल शरीर पर रह-रह कर शीतल-स्निग्ध वायु बह रही थी। बालुका पर स्वच्छ-चांदनी का ग़लीचा बिछा हुआ था। वृक्षों पर सुनहले तम्बू तने हुए थे। हरी-हरी घास लहरा रही थी। चम्पा और कनेर की मस्त-गन्ध मस्तिष्क को स्निग्धता-पूर्ण कर रही थी। ठीक ऐसी ही एक रात को सब मल्लाहों ने मिल कर सुरापान पूर्वक राधा-कृष्ण फाग की तान छेड़ी। पांवों में घुँघरू बांधकर बैजू के साले हरजू ने नाचना शुरू किया। बीच-बीच में बैजू की भी कूद-फाँद

होने लगी। ढोलक बजाने वाले का हाथ पिटते-पिटते बे-काम हो गया, किन्तु, हरजू के पैर न थके। उसने भी हार कर ढोलक एक ओर पटक नृत्य में योग दिया। अब अच्छी धमा-चौकड़ी मची। लोग मारे हँसी के लोट-पोट हो गये। तीनों मिलकर नाचते, जो थक जाता, बालुका पर लेट कुछ देर आराम कर लेता, और फिर नाचने लगता।

ऐसा करते-करते तीनो पूरे भूत बन गये। बैजू की सफ़ेद दाढ़ी धुवाँ में रँग गई, यह दशा देख बैजू की स्त्री खिलखिला कर हँस पड़ी। उसने हाथ पकड़ कर बैजू को अलग कर दिया। हरजू के घुँघरू छीन लिये और ढोलक वाले अल्हड़ जवान के दो चपत लगाये। बस, खेल बिगड़ गया। तीनों होश में आ वहीं रेत पर पैर फैला कर लेट गये।

३

माझी के पुत्र-जन्म का प्रसङ्ग पाठकों को अरोचक प्रतीत हुआ होगा। धनी-मानी पुरुषों को छोड़ एक निम्न-श्रेणी के मनुष्य के सौख्य–समागम का वर्णन कर हमने अच्छा काम नहीं किया, इसे हम भी स्वीकार करते हैं। पर, दोषारोपण करने पर 'सफ़ाई' देने के लिये तैयार नहीं हैं। कारण, प्रकृति का नियम विश्वव्यापी है। उसके अनुरोध से हमें यही कहना पड़ेगा कि जगदीश्वर की अन्यान्य-विभूतियों की नाईं सौख्य

भी किसी देश, जाति या समाज विशेष की उपभोग्य–वस्तु नहीं है। राजा–महाराजा और पूँजीपतियों के पुत्र व्योम-चुम्बिनी अट्टालिकाओं में दास–दासियों से घिरे रह कर, विलासिता की समस्त सामग्रियों के मध्य, लालित–पालित होते हैं, तो क्या इससे ताप, वर्षा और शीत के मध्य झोपड़ों में पड़े धूल-धूसरित दरिद्र-पुत्र प्रकृति–माता के कुछ कम प्रेम के पात्र हो जाते हैं? कदापि नहीं। उसकी दृष्टि में अन्यान्य लालों की नाईं, उन भस्मावृत्त कांति-हीन लालों का भी कुछ कम मूल्य नहीं है!

अस्तु इसी सिद्धान्त के अनुसार बैजू माझी का अपने नवजात-शिशु पर असीम-स्नेह था। वह उसे अपने जीवन का एक-मात्र आधार मान बैठा था। ज्योंही वह चलने-फिरने योग्य हुआ त्योंही बैजू ने उसे माता की गोद से छीन अपने जीवन का सङ्गी बना लिया। वह उसे एक क्षण के लिये भी जुदा नहीं करता था। नदी में जाल फैला कर जब वह क्रीड़ा करने वाली मछलियों को फँसाता, बालक किनारे पर बैठ कर उसके इस विचित्र-व्यापार को निर्निमेष-नेत्रों से देखता और झिझककर गोद में मुँह छिपा लेता था। उसकी परिपक्व बाल-बुद्धि शायद इस कार्य्य को गर्हित समझती थी और इसीसे वह अपनी मूक-भाषा में उससे विरत रहने के लिये बाप से कातर–प्रार्थना करता था। बाप को डाँड चलाते देख वह

उसे पकड़ने के लिये हठ करने लगता, तब बैजू उसे छोटी-सी पतवार पकड़ा देता था। वह उसे 'थप-थप' नदी के जल पर मारता और छींटें उड़ने पर बहुत प्रसन्न होता था। लोग कहने लगते—"हुश पागल! तेरे छोटे से हाथों से कहीं इतनी बड़ी नाव किनारे लग सकती है?" वह अपनी अस्फुट-भाषा में उत्तर देता—"मैया अमालो हात कोई बलो कर देहे, तब अम दादा और तुम छब को ऊ-पार ले चल हैं।" सुनकर लोग उसे उठा कर लोग गोद में ले लेते और बड़े प्रेम से मुख चूमने लगते थे।

वह कछार में लगे हुए छोटे-छोटे शाक के पौदों को तब से सींचता था। उनकी नयनाभिराम हरित-पीत-वर्णी आभा उसके हृदय की कोमल-कलिका को खिला देती, उससे प्रेम का अजस्र-स्रोत फूट पड़ता और वह उसके आवेग में उत्फुल्ल-मन से अपनी अधूरी-भाषा में बाप के सिखाये हुए गँवारी राग की तान छोड़ता था। छोटी-छोटी चिड़ियें फुदकती हुई पौदों पर चढ़ जातीं और बालक के कण्ठ-से-कण्ठ मिला कर मधुर स्वर्गीय-सङ्गीत सुनाती थी। बन्दर उसके हाथ से फल छीन कर ले जाते और द्रुत-गति से पेड़ पर चढ़ उसे चिढ़ा-चिढ़ा कर खाने लगते थे। तब वह भी दूसरे फल तोड़ उन्हें दिखा-दिखा कर खाने लगता था। मानो कहता था—"तुम एक चुरा ले गये तो क्या उससे मेरे खेत में फलों की कमी होगई?

ये देखो, अभी वैसे-वैसे सैकड़ों फल लगे हैं।" वह छोटी-छोटी हरी दूब पर सो जाता और पनडुब्बी के आने पर उसकी लम्बी गर्दन पकड़ने के लिये लपकता था। किन्तु वह उसके पास आने से पहले ही गोता मार जल में डूब जाती थी। यह देख बालक के हर्ष का पारावार न रहता, वह आनन्द-कोलाहल करता नदी में घुसने के लिये दौड़ता, किन्तु बाप पकड़ कर फिर खेत में बिठला देता था। तब बालक अन्य-मनस्क हो फलियाँ चुनने लगता था।

बैजू की अभिलाषा परमात्मा ने पूर्ण करदी। उसे अब अपने जीवन में किसी वस्तु की आकांक्षा न रही। वह पुत्र के मुख को देखता हुआ हर्ष से अपना दैनिक-कार्य समाप्त करता था। रात को एकान्त में बैठ, उसे मलूकदास जी के पद सुनाता था। बालक उन्हें दुहराता जाता और बैजू बीच-बीच में सुधारता जाता था। वृद्धावस्था में, उसका, स्त्री, सम्पत्ति और सारे परिवार का स्नेह, खिंच कर एक पुत्र में ही अटक गया था। इसीसे हमें कहना पड़ता है कि बैजू इससमय केवल पुत्र के लिये ही जी रहा था।



सावन का महीना था। बैजू की नाव घाट के कुछ ऊपर बँधी हुई थी। पिछली रात को बाढ़ आ गई थी, इस से घाट

के ऊपर पानी छा जाने से बहुत कीचड़ हो गई थी। नाव के भीतर-बाहर सब जगह कीचड़ लग गई थी। बैजू अपने नौकरों से उसे धुलवा रहा था। बालक देवजू रात की उस दुर्घटना के बाद नाव को खुले मैदान में बँधा देख क्रीड़ा-रव करता हुआ कीचड़ में खेल रहा था। वह कभी उसके निचले-हिस्से में छिप जाता कभी बाहर आ अपने साथी लड़कों के साथ डाँड़ उठा नाव खेने का स्वाँग करता कभी आगे-पीछे छिप कर आँख-मिचौनी खेलता और कभी खिलखिला कर बाप की गोद में जा बैठता था।

इतने में बादलों की कर्ण-बेधिनी गड़गड़ाहट ने मल्लाहों को चौंका दिया। बैजू ने सिर ऊपर उठा कर देखा तो मालूम हुआ कि एक बड़ी भयावनी काली घटा सूर्य को ढकती ऊपर चली आ रही है। उसने मुसकरा कर कहा—"हरजू देखो आज फिर बड़े-बड़े लक्कड़ पकड़ने को मिलेंगे। नाव को खूब मज़बूती से कस कर तैयार हो जाओ। यह देखो पूरब की तरफ़ धुँधली छा गई और यह सुनो जल की भराभराहट! बाप रे बाप! कैसा मूसलाधार पानी बरस रहा है यह देखो ...."उसके मुख से इतना ही निकला था कि सर-सर करती जल की बड़ी-बड़ी बूँदे गिरने लगीं। नावमें टप-टप शब्द होने लगा। माझियों ने भाग कर झोपड़े की शरण ली। बैजू आँखों और सिर पर का पानी पोंछ कर अँगीठी में तापने

लगा। मल्लाह भी उसे घेर कर बैठ गये। आँधी के प्रबल आक्रमणों को रोकते हुए पर्जन्य-देव ज़मीन-आसमान एक करने लगे। भीषण जलवृष्टि होने लगी। बाढ़ की एक उत्ताल-तरङ्ग ने किनारे की ऊँची-चट्टानों को डुबा झोपड़े की ख़बर ली। बैजू ने अपने कुटुम्बियों को एक ऊँचे-टीले पर बिठला नदी की ओर देखा। बड़े-बड़े फूँस के झोंपड़े, मकानों के छप्पर, खप्पर और लक्कड़ भँवरों में चक्कर खाते बड़े वेग से बहते चले आ रहे थे। एकाएक उसकी दृष्टि किसी वस्तु पर पड़ कर अटक गई। उसका चेहरा मारे हर्ष के खिल उठा। उसने साथियों को पुकार कर कहा—"भाइयो! देखो यह कितना बड़ा लक्कड़ बहता चला आरहा है चलो उसे पकड़ें।" स्वामी की आज्ञा पर मल्लाहों ने धोती समेट जल में कूदने की तैयारी की। इतने में दूर से किसी के चीख़ने-चिल्लाने की आवाज़ आई। बैजू ने नेत्र गड़ा कर देखा तो मालूम हुआ कि कोई नाव बहुत से यात्रियों से भरी बही चली आरही है। घाट के आगे ही एक बहुत बड़ा भँवर था। जो बड़ो-बड़ी नावों को अपनी ओर खींच जल-तल का मार्ग दिखला देता था। यह देख बैजू बड़े सङ्कट में पड़ा। इधर बाढ़, भुजङ्गिनी की नाईं आगे बढ़ती हुई उस के झोंपड़े को निगलना चाहती थी, उधर नाव यात्रियों समेत भँवर-रूपी दानव के विशाल-वक्ष में समाने के लिये मानो उस के श्वास के साथ खिंचती आगे बढ़ी चली

जा रही थी। पुत्र और कुटुम्बियों की चिन्ता ने क्षण-भर के लिये उसे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बना दिया। किन्तु, फिर दैव की किसी अज्ञात-शक्ति ने उसे 'स्थिर कीर्त्ति का द्वार' दिखा दिया। उसने एक बार करुण-दृष्टि से ऊपर बैठे हुए पुत्र के भयभीत मुख को देखा और 'जय गङ्गा मैया की' कह कर नदी में कूद पड़ा। रह गये नौकर मल्लाह, उन्होंने भय-विह्वल दृष्टि से नदी को ओर देख, यह कहकर कि जान-बूझ कर कौन प्राण देने जाय चुपचाप घर का रास्ता लिया।

बैजू तीर की नाईं तैरता हुआ नाव के पास पहुंचा और भय-ग्रस्त यात्रियों से, जो एक जगह सिमट कर बैठ गये थे और जिससे नाव डगमगा कर डूबने का उपक्रम कर रही थी, पुकार कर कहा—"भाइयों! मैं तुम्हारी सहायता के लिये आ पहुँचा, डरने का कोई कारण नहीं है। सम्भल कर बैठ जाओ। मेरा कहना न मानोगे तो नाहक़ अपने प्राण गँवाओगे।" उसकी अभय-वाणी से अश्वस्त हो यात्री यथा-स्थान बैठ गये। बैजू ने कमर की रस्सी खोल कर नाव से बाँध दी और बहते-ही-बहते उसे किनारे पर लाने की चेष्टा करने लगा। इतने में बाढ़ ने झोपड़े को डुबा ऊपर के टीलों की ख़बर ली। बैजू इस समय प्राण-पण से अपने काम में लगा हुआ था। उसे इस समय अपने प्यारे कुटुम्ब की कुछ भी ख़बर न थी। वह नाव को दो हाथ इस तरफ़ लाता तो जल का वेग

उसे चार हाथ धार की ओर फेंक देता था। निदान दो घण्टे के अनवरत परिश्रम से नाव धार से निकल मामूली पानी में आ गई। तब नाव के मल्लाह ने भी कूद कर उसे किनारे की ओर बढ़ाया। बैजू के कुटुम्बी सब एक टीले पर सुरक्षित-रूप से बैठे थे। एकाएक जल की एक पर्वताकार तरङ्ग ने दौड़ कर टीले को चारों ओर से घेर लिया। देवजू ने 'दादा-दादा' कह कर दो-तीन बार पुकारा। बैजू ने घबरा कर उस ओर देखा। वहां उसे जो हृदय-विदारक दृश्य दिखाई दिया उसका वर्णन् करने की शक्ति लेखनी में नहीं है। बैजू भीषण-वेग से नाव को खींच कर टीले की ओर अग्रसर हुआ। किन्तु हाय! उसके वहां पहुँचते-न-पहुँचते टीला पूर्ण रूप से जल-मग्न हो गया। वृद्ध बैजू ने ऊपर की ओर देख कर मुसकरा दिया और कहा—"देवजू! संसार की आंखों में तुम मुझ से बहुत दूर पहुँच चुके हो, पर सच जानो अब भी मैं तुम्हारे बिलकुल ही पास हूं। और लो यह तुम्हें गोद में लेने के लिये आ पहुँचा। गोवर्द्धन गिरधारी ने गही पतवार, और लग गया बेड़ा पार।" इतना कह वह गोता लगा सदा के लिये जल-गर्भ में समा गया!

तब से वह घाट बैजू के घाट के नाम से पुकारा जाता है।

* * *

१

बेकाम घर बैठे-बैठे मैंने अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर डाली। यह देख स्त्री से न रहा गया। उसने खूब मेरी भर्त्सना की। अन्यान्य कुटुम्बियों ने भी कापुरुष, अकर्म्मण्य इत्यादि कह कर मुझे बड़ी ही विचित्र-उपाधियां दे डालीं। सुनते-सुनते मेरा नाकों दम आगया। लाचार हो मैंने अपनी दुःख कहानी इष्ट-मित्रों को सुना दी। उन्होंने कहा—"कुछ अङ्गरेज़ी समाचार-पत्रों में नौकरी के विज्ञापन निकलते हैं, आप उन्हें देखा कीजिए।" मुझे भी उनकी सलाह पसन्द आई। पर वे पत्र मिलें कैसे? ग्राहक बनने के लिये रुपया चाहिए। यदि कहीं से एकाध प्रति मिल भी गई तो क्लिष्ट अङ्गरेज़ी के भाव हृदयङ्गम करने की योग्यता कहां? निदान मैंने कचहरी के बाबुओं से मेल-जोल कर लिया। खुशामद भी की। जो काग़ज़-पत्र वे देते उनकी नक़ल कर के उन्हें दे देता था। इससे वे मुझे खूब चाहने लगे। भाग्य से उन्हें एक बेगारी मिल गया। जो अमला दफ़्तर में जिस दिन अपना पूरा

काम न कर सकता वही कागज़ों का पुलिन्दा मेरे घर ले पहुंचता। इससे मुझे मिलता-जुलता तो कुछ न था, पर इस बात से सन्तोष था कि सब मुझे आदर की दृष्टि से देखते थे। अवकाश मिलने पर आवश्यकता (Wanted) शीर्षक विज्ञापनों का संक्षिप्त-विवरण सुना दिया करते थे। मेरे लिए यही बहुत बड़ी बात थी, मैं इसे अपना बड़ा सौभाग्य समझता था, और आशा करता था कि किसी दिन इसी अमोघ अस्त्र से दुर्दण्ड-शत्रु को पराजित कर जीवन-पथ सुखमय बना लूंगा।

ईश्वर की कृपा से शीघ्र ही सुयोग मिल गया, भुसावल में······के आफ़िस में ३०) की एक जगह खाली हुई, मेरे मित्र बा० ईश्वरीप्रसाद ने शीघ्र ही वह गज़ट ला मेरे आगे रख दिया। मैंने उन्हें कृतज्ञता-पूर्ण अन्तःकरण से करोड़ों धन्यवाद दिये। उन्होंने वहीं बैठे चट एक नमूना बना दिया। उनके चले जाने पर मैंने दावात में नई स्याही बना, ढूँढ़ खोजकर अच्छा बढ़िया होल्डर निकाला और मोटे फुलस्केप के फुल-शीट पर बड़ी सावधानी से सुधार-सुधार कर उसकी नक़ल करने लगा। दो-तीन कागज़ ख़राब करने पर कहीं मन के मुताबिक़ अर्ज़ी तैयार होसकी। उसे तीन-चार बार पढ़ा, अक्षरों की बनावट को देखा फिर मन से पास का सार्टिफ़िकेट ले लिफ़ाफ़े में रख स्वयं डाक घर के लेटरबक्स में छोड़ आया। इधर

आर्डर की प्रतीक्षा करते कई दिन बीत गये। यहां तक कि एक पखवाड़ा पूरा होने को आया। पर कोई उत्तर न मिला। मन-ही-मन जो कल्पना का पुल बाँधा था, धीरे-धीरे फिसल चला। मैंने अपने मित्र बाबुओं से फिर सलाह ली, उन्होंने एक उपाय निकाला। ईश्वरीप्रसाद जी के सहपाठी एक वकील भुसावल में रहते थे। उन्होंने उनके नाम एक निजी चिट्ठी लिखी और मुझे देकर कहा कि भुसावल जाओ, इसके द्वारा आपका काम सिद्ध हो जायगा। मैंने मन-ही-मन अपने शुभेच्छु ईश्वरीप्रसाद की उदारता को खूब सराहा और किसी प्रकार १०) का प्रबन्ध कर भुसावल की यात्रा की। चलते समय छोटा लड़का 'हरी' रोने लगा और दूर तक मेरे पीछे-पीछे चला आया। किन्तु उस दिन मुझे और ही धुन बँधी थी, अतः उसे पैसा देना तक भूल गया। उसका रोना मुझे बहुत दूर तक स्पष्ट सुनाई दिया किन्तु फिर ?

हरी के पवित्र प्रेम की अवहेलना कर मैं गाड़ी पर जा बैठा। तुरन्त ही सीटी बजी और मैं परिवार से प्रथक् हो वायु-वेग से भुसावल की ओर अग्रसर हुआ।

२

यह भी कह देना उचित है कि मैं पहिले-ही-पहल परदेश निकला था। अस्तु, नौकरी की उमङ्ग में चला तो गया,

किन्तु बिना जंक्शन पर उतरते ही मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ। यहाँ का दृश्य मुझे स्वप्न सा बोध हुआ। मैं एक ओर खड़ा हो अपनी वर्तमान-स्थिति का अनुसन्धान करने लगा। किन्तु शीघ्र ही टिकट कलेक्टर ने मेरा ध्यान खण्डित कर दिया। स्वप्न दूर हुआ।

टिकट बतला कर मैं गेट से निकल एक ओर जा बैठा। मेरे मुख पर भय और संकोच की अमिट रेखा अङ्कित थी। जो लोग मुझे देखते—हँस कर दूसरी ओर चले जाते थे। निदान त्यों-त्यों कर मैं सब की दृष्टि बचाता दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा। ज्यों-ही गाड़ी आई त्यों-ही मैं सब से पहले उस पर जा बैठा। चित्त बहुत कुछ हलका हुआ। समझा अब भुसावल पहुंचाया गया। किन्तु गाड़ी के चलते ही फिर दुर्भावनाओं ने आ घेरा—"अपरिचित स्थान में एक अपरिचित संभ्रान्त-मनुष्य से किस प्रकार साक्षात्कार करूंगा? कौन मुझे वकील बाबू के निकट ले जायगा? मान लिया किस प्रकार गया भी और सहायता न मिली तो विमुख होकर घर लौटना पड़ेगा। तब तो और भी हँसी होगी।" इत्यादि-इत्यादि सोचता हुआ मैं न जाने कहां पहुँच गया। इतने में गाड़ी एकाएक रुकगई। समझा, पहला स्टेशन है। किन्तु भुसावल की ध्वनि कान में पड़ते ही मैं चौक पड़ा। झट ट्रंक उठाकर गिरता-पड़ता नीचे उतरा। कई सज्जनों ने मुझे घबराया हुआ

देख ढाढ़स बँधा बाहर किया। यहाँ भी मुझे कई प्रकार की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। इक्के वाले की कृपा से मैं सराय में जा पहुँचा, वहाँ भोजनादि से निवृत्त हो मैं बाज़ार की ओर चला। इस जगह कोई मेरा परिचित न था। अस्तु, किस प्रकार वकील बाबू के यहाँ पहुँचना चाहिए, खड़ा-खड़ा यही सोचने लगा। इतने में अचानक मेरी दृष्टि एक मनुष्य पर पड़ी। मैंने देखा, मेरे बालबन्धु केशवचन्द्र जैन एक दुकान पर खड़े किसी से बातचीत कर रहे हैं। उस समय जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। अब भी ऐसे अनेक प्रसङ्ग आते हैं, पर उस अपार्थिव सुख के आगे सभी तुच्छ जान पड़ते हैं। अस्तु, मैं उन्हें साक्षात् बुद्धदेव का अवतार समझ निकट दौड़ गया। वे भी मुझे पहिचान गये। अब क्या था—छुटपन के बिछुड़े दोनों मित्र खूब गले लगकर मिले। अनन्तर सामान सराय से उठवा वे मुझे घर लिवा ले गये। यहाँ ईश्वर की कृपा से मुझे सब बातों का आराम मिला। आज का दिन अतिथि-सत्कार में बीता। दूसरे दिन मेरे मित्र ने एक मनुष्य के साथ मुझे वकील बाबू के यहां भिजवा दिया। किन्तु ज्योंही मैं उनके मकान पर पहुँचा त्योंही उनकी मोटर भों-भों शब्द करती हुई सामने से निकल गई। वकील साहब ने मुझे और मैंने वकील साहब को देखा। किन्तु सम्भाषण नहीं हो सका। लाचार हो

हो मुझे उस दिन डेरे पर लौट जाना पड़ा। दूसरे दिन इतवार था। मालिक से छुट्टी ले आज केशवचन्द्र जी ने मुझे वकील साहब के यहां ले गये। वकील इष्ट-मित्रों के साथ बैठे छुट्टी मना रहे थे; ताश का खेल हो रहा था। 'हाहा-हीही' का विकट-रव दशों दिशायें प्रतिध्वनित कर रहा था। त्रिजिक का बड़ा मार्क जीतने पर बड़ा कोलाहल मचता था। मैं यह सब देखता हुआ मन-ही-मन ईश्वर से उसकी शीघ्र समाप्ति के लिये प्रार्थना करता जाता था। बड़ी कठिनाई से बारह बजे। भगवान प्रसन्न हुए। खेल बन्द हुआ सही, किन्तु उधर से एक और बला सिर पर आ खड़ी हुई। पण्डा महाराज जो जो बीच में भी दो-तीन बार टर्रा चुके थे—एकदम सामने आ धमके और बोले—"खाना कब का ठण्डा हो रहा है, क्या आज इसे भी छुट्टी दे दी है?" वकील साहब हँस कर चुपचाप अन्दर चले गये। आज का सुयोग भी हाथ से निकल गया। हम लोग घर लौट आये, दूसरे दिन ज्योंही मैं घर से निकला त्योंही सामने से ताँगे पर उन्हीं वकील साहब को स्टेशन की ओर जाते देखा। मैं अभिनय समझ गया। वह गाड़ी के आने का समय था। वकील साहब कहीं जाने वाले हैं, यदि आज का मौक़ा भी निकल गया तो फिर हाथ मलते घर लौटना पड़ेगा। इसी विचार में उनके पीछे दौड़ता गया। खूब ज़ोर से दौड़ने पर भी तांगा आगे निकल गया। वकील साहब

उतर कर ट्रेन पर जा चढ़े। मैं भी प्लेटफार्म टिकिट ले डब्बे में उन्हें ढूँढ़ने लगा एक सेकैंड क्लास में उनके दर्शन हो गये। मेरे जी-में-जी आया। मैंने खिड़की में से सिर भीतर निकाल कुछ पूँछना चाहा। इतने में उन्होंने त्यौरी बदल कर मेरी ओर देखा। मेरे देवता कूँच कर गये। अब मुझे मालूम हुआ वे वकील साहब नहीं, वरन् एक अङ्गरेज सज्जन हैं। मैं अपनी इस भूल पर अत्यन्त लज्जित हुआ और पश्चाताप करता घर लौटा। चौथे दिन वकील साहब से घर पर भेंट होगई। मन ही मन श्री हनुमानजी को १। सेर मिठाई चढ़ाने का संकल्प कर मैंने वह पत्र जो ईश्वरीप्रसाद ने लिखा था उन्हें दे दिया। उन्होंने उसे पढ़, एक पत्र लिख कर मुझे दिया। मैंने ज्यों-त्यों कर उसका अर्थ समझ लिया, वह डिप्टी बाबू के नाम मेरी सिफ़ारिश थी। वकील साहिब को धन्यवाद दे, मैं डिप्टी बाबू के यहां रवाना हुआ घर पर उनसे भेंट नहीं हुई। आफ़िस पूछने पर मालूम हुआ कि वे किसी विशेष कार्य के लिये बम्बई गये हैं। सुन कर मेरा मुख सूख गया। किन्तु उपाय ही क्या था? न जाने से नौकरी हाथ से निकली जाती थी। अस्तु, मैं मित्र से १०) रु० उधार ले उसी दिन बॉम्बे मेल पर सवार हो गया।

३

शहरों का घूमना श्रीमानों के लिये ही सुखकर होता है,

द्रव्यहीन मनुष्यों को वहाँ बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। यद्यपि बम्बई में देश-देशान्तरों से विलास की सामग्री लाकर इकट्ठी की गई है, तथापि हमारे जैसे मनुष्यों के लिये यह विडम्बना मात्र है! जगद्विख्यात लन्दन महानगरी के उपमेय इस स्थान को देख नेत्र भले ही शीतल हों, पर हृदय की दाह किसी अंश में कम नहीं होती। अस्तु, विस्तार-भय से मैं इस प्रसङ्ग को यहीं छोड़ आगे की बातें कहता हूं।

मैं साहस बाँध बम्बई की एक गली में घुस गया। इस जगह मुझे विशेष सावधानी से चलना पड़ा। कई जगह मोटरों से कुचलते-कुचलते बचा। पचासों जगह पुलिस वालों ने नाम-धाम पूछा, मेरी वेश-भूषा भी विचित्र थी। लोग शायद इसे अकबरी-विवाह समझ मुस्कराते हुए चले जाते थे। इतने में एक बड़ी दुकान का साइन-बोर्ड देख मैं खड़ा हो गया। एक सेठ जी बोले-"पता लिखोगे?" मैंने धीरे से कहा—'पता क्या बला है?" पर पास में पैसा नहीं था। कल से उपवास की नौबत आने वाली थी। साहस करके पूछा, "क्या मिलेगा?" सेठ जी ने कहा "एक रु० रोज़।" सुनकर कुछ प्रसन्नता हुई। उनका कहना स्वीकार कर लिया। दो-तीन दिन यही काम किया। किन्तु अभागे हस्त-लेख ने मुझे यहाँ भी न टिकने दिया। मैं ट्रंक लिये फिर इधर-उधर घूमने लगा। किसी प्रकार एक सराय में उतर ही रहा था कि इतने में सोने के

मोटे कड़े डाले हुए एक सेठ जी आ पहुँचे। और बोले, "कहाँ से आना हुआ बाबू?" मैंने उनसे सच्चा हाल कह दिया। सुन कर उनका हृदय पिघल गया। वे मुझे एक दूसरे कमरे में ले गये। वहीं उनका सामान रक्खा था। चार-पाँच नौकर बैठे अपना काम कर रहे थे। वहाँ पहुँच सेठ जी ईज़ी-चेयर पर लेट गये। मैं भी बैठा। सेठ जी ने कहा—"हम पनवेल से यहाँ व्यापार करने के लिये आये हैं। जो काम करने वाले हैं, उसमें कई पढ़े-लिखे चतुर मनुष्यों की आवश्यकता है। अस्तु, यदि आप मेरे यहां काम करना चाहें तो आप को ५०) मासिक वेतन दिया जायगा।" सुनकर मैं अवाक् होगया। एकदम ५०) की नौकरी? मैंने कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार कर सेठ जी को धन्यवाद दिया। उन्होंने उसी दम हलवाई से कह, मेरे भोजन का प्रबन्ध करवा दिया उनके साथ मैं दो-तीन दिन बड़े आनन्द से रहा। पीछे मेरा सामान भी उसी कमरे में पहुँच गया। सेठ जी ने आज मुझे व्यापार-सम्बन्धी काम के लिए बाज़ार चलने को कहा। पर मैं भ्रमण-प्रिय न होने के कारण बहाना कर डेरे पर रह गया। दूसरे भी दिन ऐसा ही हुआ। तीसरे दिन ज्योंही मैं जागा, त्योंही मैंने कमरे को जन-शून्य पाया, सामान का नाम-निशान तक वहाँ न था। अब मेरी मोह-निद्रा भङ्ग हुई। मैं इसका अर्थ समझ गया। अपना ट्रङ्कऔर कपड़ों का बण्डल समेट मैंने ईश्वर को

धन्यवाद दिया। कारण कि मेरा सामान कुछ नहीं तो चालीस-पचास रुपये का अवश्य था। उस पर हाथ साफ़ करने के लिये ही यह षड्यन्त्र रचा गया था। अस्तु जो हो ईश्वर की कृपा से मैं बाल-बाल बच गया। हलवाई दाम का तकाज़ा न करने लगे, इस भय से मैं भी ट्रङ्क उठा वहाँ से चल दिया।

सौभाग्य से मैं डिप्टी बाबू का पता नोट कर लाया था। आज सहसा उस काग़ज़ पर दृष्टि पड़ गई। मैंने चट उनके नाम एक कार्ड छोड़ दिया, दूसरे दिन निर्दिष्ट स्थान पर मुझे उसका उत्तर भी मिल गया। मैंने प्रसन्न हो वायुकुली की यात्रा करदी। वहाँ उनसे भेंट हुई। उन्होंने कहा—"कई उम्मेद-वार वर्षों से दफ़्तर में काम कर रहे हैं। उन्हें छोड़ तुम्हारी कैसे सिफ़ारिश कर दूँ?" सुनकर मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। कण्ठ रुक गया। शरीर को काटो तो खून नहीं। इतनी दौड़-धूप और रुपये-पैसे का ख़र्चा सब व्यर्थ गया। मेरी यह दशा देख बाबू को दया आ गई। बोले—"पन्द्रह दिन बाद मुझे भुसावल में मिलो, कोशिश करके ज़रूर जगह दिला दूंगा।" मैं मर कर मानों फिर जी उठा। इतना प्रसन्न हुआ मानों आकाश-कुसुम हाथ लग गया। अस्तु. डिप्टी बाबू को भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर मैं वहां से लौटा। आज मैंने अघाकर नींद ली।



उपसंहार ।

डिप्टी बाबू से विदा हो मैंने बम्बई से अपना पिण्ड छुड़ाया। रास्ते में मेरी आँख लग गई, जागने पर मालूम हुआ कि ट्रंक और कपड़ों का बण्डल चला गया। ज्यों-त्यों कर मैं घर पहुँचा। नौकरी मिलने की आशा ने चिन्ता और चित्त की ग्लानि मिटा दी। उस समय मेरे मुख पर विजय एवं परितृप्ति का अटल-भाव विद्यमान था। पास में कौड़ी नहीं बची थी तो भी आज हरी को मिठाई खिलाये बिना न रहा।

उसी दिन से मैं भी भोलानाथ जी की सेवा करने लगा। लोगोंने कहा—"आशुतोष भगवान ही जीविका के देनेवाले हैं।" अस्तु मैं नित्य मन्दिर में जा दर्शनकरता, श्रीफल चढ़ाता और बिल्व-पत्रादि द्वारा निविष्ट-मन से उनका पूजन करता। निदान, वह १५ दिन की अवधि पूर्ण हुई। कुछ रुपया और उधार ले शिवशङ्कर का स्मरण करता हुआ मैं भुसावल पहुँचा। किन्तु ऑफ़िस में पहुंचते ही मुझे सुनाई दिया। "जगह भर गई!"

उस समय मेरी जो दशा हुई वह कही नहीं जा सकती।



नवाँ आँसू

वि
चि
त्र
 
प
री
क्षा

१

"दिवाला निकल गया।"

"किसका ?"

"आपके समधी सेठ कृष्णदास का।"

"यह कैसे हुआ ?"

"दैव-कोप से।"

नौकर के मुँह से यह अशुभ-संवाद सुन सेठ हरलाल अवाक् हो गये!

२

सेठ हरलाल के पुत्र के साथ कृष्णलाल जी की पुत्री का वाग्दान हुए अभी एक वर्ष भी नहीं बीता था कि इतने में यह दुर्घटना घटगई। कृष्णलाल जी नमिच के प्रसिद्ध रत्न-व्यवसायी थे। भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों में आप की शाखाय खुली थी। लोग आपकी गणना भारत के धन-कुवेरों में किया करते थे। 'साख' भी अच्छी थीं। आपकी केवल 'बात' पर

लाखों का क्रय-विक्रय हो जाता था। मुनीम-गुमाश्ते खड़े-खड़े उनके नाम के प्रताप से सैकड़ों रुपया कमा लेते थे। इधर कुछ दिनों से उनके पुत्र ने शाज़ापुर के पास कई गाँव ख़रीद साहूकारी और मालगुज़ारी का भी सिलसिला जमाया था। लोग कहते थे पिता से पुत्र अधिक यशस्वी होगा।

सेठ हरलालजी उज्जैन में कपड़े का व्यवसाय करते थे। आप द्रव्य में कृष्णलाल जी के पासँग भी नहीं थे, पर जातीय-सम्बन्ध में उनसे बड़े थे। यही कारण था कि आपके पुत्र को धन-कुवेर कृष्णलाल कन्या देने के लिये उद्यत हो गये। इस संबंध से हरलाल जी बहुत प्रसन्न थे। कारण, उन्हें समधी के यहाँ से आशातीत लाभ होने वाला था। इतने बड़े सेठ के यहाँ विवाह होने से पुत्र मालामाल होजायगा। समाज-प्रतिष्ठा भी बढ़ जायगी और पुराना क़र्ज़ भी सब चुक जायगा। वे मन में इसी प्रकार के हवाई-क़िले बाँध रहे थे कि इतने में यह दुःखद-संवाद सुनाई दिया। अस्तु, इसका सेठजी पर कैसा प्रभाव पड़ा होगा इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लेंगे।

३

सेठ हरलालजी ने जो मन-ही-मन आशाओं का चित्र आँका था, उस पर एकदम कालिमा फिर गई। साथ ही एक विपत्ति सिर पर आ पड़ी। ऐसी दशा में समधी सेठ सहायता न

माँग बैठें ? यदि ऐसा हुआ तो क्या करना पड़ेगा, यही सोचते-सोचते हरलाल बहुत दुबले होगये। मुनीमों ने बहुत समझाया-बुझाया पर सेठ जी का बोझ किसी प्रकार हलका न हुआ। एक दिन बूढ़े मुनीम चम्पालालजी एकान्त में सेठजी से बोले-"मालिक, संसार में यह कुछ नई बात तो है नहीं, जिसकी इतनी चिन्ता की जाय। ऐसा तो होता ही जाता है। लाला के भाग्य में लिखा होगा तो ऐसाही—और इस से भी बढ़कर—दूसरा घर मिल जायगा। आप धैर्य्य रखो।" सुनकर सेठजी मुस्कराये और धीरे-धीरे कहने लगे-"मुनीमजी, इसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं है। जो होना था सो होगया। पर यदि ऐसे समय में वे कदाचित् हमारा आश्रय लेना चाहें तो हमें किस प्रकार पिंड छुड़ाना होगा, यही सोच रहा हूँ।" वृद्ध मुनीम ने कहा-"यह भी कोई बात है—हमने क्या उनका क़र्ज़ निकाला है ? हमसे बन पड़ेगा तो सहायता करेंगे अन्यथा सीधा जवाब देदेंगे। और यह आप कह ही किस आधार पर रहे हैं ? उनका क्या कोई पत्र आया है ?"

सेठजी ने कहा-"अधारी उज्जैन का बूढ़ा वणिक क्या इतनी भी बात न समझ सकेगा ? डूबता हुआ मनुष्य तिनके का आधार लेता है, तुम्हीं बतलाओ, ऐसी दशा में वे हमें छोड़ और किसका आश्रय लेसकते हैं ? फिर मेरा स्वभाव आप जानते हैं। मैं मुट्ठी तो मज़बूती से बाँधता हूँ, पर जब संकोच

में पड़ जाता हूँ, तब उसके खुलने में तनिक भी विलंब नहीं लगता। इसी से तो इतना आगा-पीछा कर रहा हूँ।" बूढ़े मुनीम ने हँसकर कहा—"ऐसा ही है तो चिन्ता न कीजिये। आपके लिये मैं बुरा बनने को तैयार हूँ। जब ऐसा मौक़ा आवे, तब आप अपनी बला चुपचाप मेरे सिर पर डाल दीजियेगा। मैं समझ लूँगा।"



आज सेठजी से अच्छी तरह भोजन नहीं किया गया। दिन तो ज्यों-त्यों कर कट गया पर रात राक्षसी-सी खाने को दौड़ने लगी। बड़ी कठिनाई से बारह बजे निद्रा आई तो नाना प्रकार के दुःस्वप्न दिखलाई देने लगे। बहुत से भूतों के बीच उन्हें एकाएक सेठ कृष्णलाल का नर-कंकाल दिखा गया। वह भयावनी मूर्त्ति, धसे हुए नेत्र और हाथी जैसे बड़े-बड़े दाँत देख सेठजी चौंक पड़े। शरीर पसीने से तर हो गया। ज़ोर से चिल्लाया ही चाहते थे कि इतने में 'नर-कंकाल' ने निकट आ गिड़गिड़ाना प्रारम्भ किया। वह हाथ जोड़ उन से रुपयों की भिक्षा माँगने लगा। उसकी आत्मा ने मानो सेठ जी की आत्मा से कहा—"हम-तुम दोनों एक ही वस्तु हैं, फिर तुमको सुख की निद्रा और मुझे नरक-यन्त्रणा क्यों?" पर केवल बचन की भिक्षा देने वाले हरलाल भला कब पसीजने वाले थे।

उन्होंने डर कर खूब मज़बूती से दबा कर चादर ओढ़ ली। भूत छोटा रूप धारण कर कहीं से घुस न आय, इसी आशङ्का से वे श्वास रोक मृतक की नाईं अकड़ कर पड़े रहे। पर भूत ने उनका पिंड न छोड़ा। एक ही झटके में उसने चादर निकाल एक ओर फेंक दी और सेठजी के पाँवों से अपनी नाक रगड़ने लगा। अब तो सेठ जी से न रहा गया। गहरी चीख मार कर चिल्ला उठे—"दौड़ो दौड़ो बचाओ, मुझे भूत लिये जाता है!" सुन कर घर के सब लोग जाग पड़े। लड़के ने दौड़कर सेठ जी को पकड़ लिया। नौकरों ने एकत्रित हो प्रश्नों की बौछार कर दी। सेठ जी ने दुःखमयी भर्राई आवाज़ में कहा—"अरे कायरो! अभी यहीं तो था यहीं—तब तो कुछ किया न गया अब आगये मेरा सिर खाने। जाओ, आज मैं किसी से बात-चीत न करूंगा।" लड़के ने कहा—"पिता जी! स्वप्न की बात कभी सत्य हुई है उस पर आप क्यों ऐसा विश्वास कर रहे हैं? मुझे ही नित्य सैकड़ों स्वप्न दिखते हैं, पर मैं आपकी तरह कभी नहीं घबराता।" सुन कर सेठ जी ने क्रोधमयी दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—"चुप गधे, तुझे क्या मालूम! जा, अपना रास्ता ले। मैं आज जागरण कर 'श्री हनुमान चालीसा' का पाठ करूँगा।" लड़का अपना सा मुँह लिये चला गया।

५

दूसरे दिन बड़े तड़के सेठ जी के बाहर आते ही बड़े

मुनीम चम्पालाल छटपटाते हुए पैरों से उनके पास पहुँचे और किसी हिन्दी समाचारपत्र का मोटे शीर्षक वाला लेख पढ़ कर सुनाने लगे। उस में लिखा था:—

नीमच के सेठ कृष्णलाल पर दस लाख की नालिश।
वारन्ट निकाला गया, आगामी १५ जून की पेशी है।

इस समाचार को सुन कर सेठ जी का चेहरा पीला पड़ गया। हृदय के आवेग को रोककर वे वहीं बैठ गये। मुनीम जी ने समझाने के लिये मुँह खोला ही था कि निषेध-सूचक मस्तक हिला कर सेठ जी ने संकेत से उन्हें बाहर जाने को कहा। उन के चले जाने पर वे पागल की नाईं बैठकखाने में इधर-उधर घूमने लगे। यहाँ-वहाँ झाँक कर उन्होंने धीरे से एक सन्दूक खोला। उसमें से कपड़े में लिपटा हुआ एक छोटा-सा पुलिन्दा निकाला। फिर काग़ज़ों को फैला कर उनमें से कोई पुराना लेख ढूंढ़ने लगे। वह उन्हें शीघ्र ही मिल गया। उसका ऊपरी भाग खोला। ध्यान से दो पंक्तियाँ पढ़ीं। फिर उसे वहीं पटक कुछ सोचने लगे। स्पष्ट तो नहीं पर धीरे-धीरे गुनगुनाते हुए वे आप-ही-आप कहने लगे—"सेठ कृष्णलाल ने सर्वस्व देकर हमारे पिता की लज्जा रक्खी थी। और मैं ऐसे सकङ्क में मुँह छिपा घर में घुसा बैठा हूं। कैसी कृतघ्नता है! ओफ़! १० लाख रुपया देने पर तो मेरे पास कल के खाने को न रहेगा। फिर लड़कों-बच्चों

की क्या दशा होगी ? मैं जीते जी उन्हें दर-दर भीख माँगते देख सकूँगा ? मुझ में इतना आत्म-संयम कहां है ? संसार में सामर्थ्यानुसार मनुष्य एक दूसरे की सहायता करते हैं। सामर्थ्य के बाहर सहायता करते तो मैंने किसी को नहीं देखा। कृष्णलाल ने भले ही मेरे पिता की सहायता की हो, पर मैं क्या उसके लिये अपना बना-बनाया घर बिगाड़ दूँ ? वह तो बिगड़ा ही है, क्या मैं भी उसके लिये बिगड़ जाऊं।" सहानुभूति-बुद्धि ने मानों धीरे से कान में कहा—"उस दिन कृष्णलाल ने क्या इसी अन्धी-बुद्धि के सहारे चुपचाप तुम्हारे पिता को साढ़े बारह लाख रुपये ला दिये। जिसकी आज तक किसी को ख़बर नहीं है। उसके साहस एवं स्वार्थ-त्याग को तो देखिये, और एक बार दृष्टि डालिये उसके अनिर्वचनीय आत्म-संयम पर। इतना रुपया देकर कभी जिह्वा से शब्द तक न निकाला। ऐसे अनन्य-परोपकारी मनुष्य के साथ तुम्हारा यह दुर्व्यवहार! जघन्यता की पराकाष्ठा हुई! बुढ़ापा आ ही गया है; और कितने दिन इस धन को देखते रहोगे? साथ तो जायगा ही नहीं, फिर पिता ही से क्यों नहीं उऋण हो लेते? देखो पत्र का अन्तिम वाक्य, 'यदि हरलाल अपने जीवन में इस ऋण का परिशोध कर सका, तो उसके पिता की स्वर्गस्थ आत्मा उस के लिए आनन्द के आँसू बहाये बिना न रहेगी।' छिः यही तुम्हारी पितृ-भक्ति है! इसी के

सहारे तुम स्वर्ग का द्वार खोलने का प्रयत्न कर रहे हो! तुम कपटी, पापी और प्रपंचक हो। आज से तुम अपने पूज्य पिता की दृष्टि से गिर चुके। तुम्हारी यह कलंक-कथा मर्त्यलोक में नहीं तो परलोक में एक दिन अवश्य नरक के द्वार पर यमदूतों द्वारा लाये गये पापियों को चेतावनी के लिए रक्ताक्षरों में लिखी जायगी। उठो उठो, अब भी समय है। ऊपर की ओर देखो तुम्हारे पिता तुम्हें पवित्र-मार्ग दिखला रहे हैं!" इस बार सेठजी ने आँख उठाकर ऊपर को देखा। जो कुछ उन्हें दिखलाई दिया, उससे उनका सारा शरीर थर्रा गया। वे "हा पिता!" कह मूर्च्छित हो वहीं गिर पड़े।

६

सेठ कृष्णलाल पर मुक़द्दमा चलते दो मास होगये। किसी ने भी इस परम-धार्म्मिक, परोपकार-व्रत-परायण मनुष्य-रत्न के छुटकारे का उपाय न किया। उस ओर ध्यान तक न दिया। संसार का काम जैसा पहले चलता था, वैसा अब भी चलता रहा। समुद्र में से निकाले गये एक बूँद जल की नाईं उसमें कुछ अन्तर न पड़ा। अब भी भारत में अगणित धनी-मानी सेठ साहूकार विद्यमान थे। वे सब खूब धूमधाम से अपना-अपना कारोबार करते थे। सेठ कृष्णलाल के चले जाने से रत्न-परीक्षकों का अभाव नहीं हुआ, अपितु वृद्धि हो गई। उनके सभी

मुनीम-गुमाश्ते जहाँ-तहाँ अपनी निज की दूकानें खोल तकिये लगा कर बैठ गये। कृष्णलाल जी सपुत्र घटना-चक्र में पड़ भाग्य के तमाशे देख रहे थे। अस्तु अब उनके स्वजन और इष्ट-मित्र तक उनकी निंदा करते थे। जहाँ-तहाँ लोग सेठजी के दुर्गुणों ही की अलोचना करते दीखते थे। गुण तो उनमें मानों थाही नहीं। इसी से हम कहते हैं, संसार एक आँख से बिलकुल अंधा है। चार दिन पहले उन्ही सेठ की प्रशंसा करते-करते जिनके मुँह सूखते थे, वे ही खुले मैदान उन पर धूल फेंकने के लिये उद्यत हो गये। अस्तु विस्तार-भय से हम इसे यहीं छोड़ अपनी कहानी पूर्ण करते हैं।

इधर पेशी पर पेशी बढ़ने लगी उधर हरलालजी का आनंद दिन-दूना रात चौगुना होता गया। चिन्ता-व्याधि ने उन्हें ऐसा दबाया कि वे उठने-बैठने से लाचार हो गये। पुत्र ने साहस धर एक बार उनसे कुछ कहना चाहा पर उन्होंने हाथ हिला कर मना कर दिया। मुनीम-गुमाश्ते सभी समझाने के लिये उनके पास जाना चाहते थे पर उन्होने मिलना-जुलना बिलकुल बंद कर दिया था इससे लाचार थे। सेठजी को रास्ते पर लाने के लिये अनेक यत्न किये गये, पर जब वे सब निष्फल हुए तब लोग अपना-अपना सिर पीट चुप हो गये।

चौथी पेशी पर मुक़द्दमे का फ़ैसला होने वाला था। आजही वह तारीख़ थी। आदालत में दर्शकों की खूब भीड़ थी। सेठजी के महत्वपूर्ण जीवन का अंतिम-पटाक्षेप देखने के लिये सभी उत्कंठित थे। नियत समय पर न्यायधीश ने आसन ग्रहण किया। मिसल सामने रख उन्होंने करुण-दृष्टि से

सेठ कृष्णलाल की ओर देख कर कहा—"फ़ैसले के लिये आप और समय चाहें तो मिल सकता है।" सेठ कृष्णलाल ने सरल-भाव से हँसकर कहा—"उससे लाभ महाशय ?" उत्तर सुनकर ज्योंही न्यायधीश निर्णय लिखने बैठे त्योंही एक मलिन-वेशी जीर्ण-काय वृद्ध पुरुष ने अदालत में प्रवेश किया। चपरासी के रोकने पर भी वह आगे बढ़ तथा नोटों का एक बहुत बड़ा पुलिन्दा टेबिल पर रख चुपचाप खड़ा होगया। लोगोंने उन्हें पहचान लिया। वे सेठ हरलालजी थे। न्यायाधीश लेखनी पटक मुँह में अँगुली दबा कर रह गये और दर्शकों के जयजयकार एवं धन्य-धन्य की ध्वनि से न्यायालय गूँज उठा। ठीक इसी समय सेठ कृष्णलाल का संदेस पा, बाहर खड़े हुए भृत्य ने अदालत के सामने नोटों का ढेर लगा दिया। इस विचित्र-व्यापार को देख लोग आश्चर्य्य में डूब गये। जयजय-कार और धन्यवाद के कर्णवेदक निनाद की जगह गहरा सन्नाटा छागया। सेठ हरलालजी भी चकरा गये। न्यायाधीश ने हँसकर कहा--"कृष्णलालजी यह क्या तमाशा है ?" सेठजी ने उत्तर दिया—"तमाशा नहीं, परीक्षा! और वह ऐसी-वैसी नहीं, समधी की योग्यता की।" इसके बाद उन्होंने उपस्थित सज्जनों के समक्ष सेठ हरलालजी को सम्बोधित कर कहा—"महा भाग्य हरलालजी। आज आपने पितृ-ऋण का परिशोध करदिया और साथ ही मेरा कन्या-दान भी पक्का हो चुका। यह सब धन मैंने अपने दामाद को दहेज में दे दिया।"

卐 卐 卐

कुछ उत्तम पुतकें ।

रङ्गभूमि श्री प्रेमचन्द	५)	हक़ीक़तराय	१=)
सेवा सदन "	२॥)	त्यौहार पद्धति	१)
अहङ्कार "	॥=)	संगठन का बिगुल	॥=)
विषाक्त प्रेम	१।)	आदर्श मृत्यु	॥।)
व्यावहारिक ज्ञान म. गांधी	३॥)	रामायण	३)
क्रांतिकारी विचार "	३॥)	साहित्य रत्न मञ्जूषा	॥=)
सत्यानन्द	१॥)	हरिश्चन्द्र	॥।)
प्रतिशोध (दो भाग)	३॥।)	प्रेम का फल	१।)
कुसुम संग्रह	१॥)	नव निकुञ्ज	१।)
सप्त सरोज श्री०प्रेमचन्द	॥)	महाराणा प्रतापसिंह	१।)
मोहिनी	॥।)	पद्मिनी	॥।)
शहीद संन्यासी	॥।)	ज़ख्मी हिन्द कि० चन्द 'ज़ेबा'	॥)
पञ्जाब हत्याकाण्ड	१)	भीषण डाकू	॥)
चन्द्रभागा	१॥)	गऊ वाणी	॥=)
भूतों का मकान	॥।)	पैसे का साथी	१॥)
सदाचार सोपान	।=)	जैनलॉ	२)
कालेपानी का कारावास		ज्योतिष सार	१॥)
कहानी, भाई परमानन्द जी	१॥)	हिन्दी ताज़ीराते हिन्द	१।)
भारतमाता का सन्देश	॥)	जर्राही प्रकाश	१॥)

इसके अतिरिक्त चाँद कार्यालय, सस्ता साहित्य मण्डल, आर्य पुस्तकालय बरेली और हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई की सभी पुस्तकें हमारे यहाँ मिल सकती हैं ।

पता :—हिन्दी पुस्तक कार्यालय,

कूचा पातीराम, देहली ।